हरियाणा खेती

ISSN-0970-6518

वर्ष 53 अंक 4

वार्षिक चंदा ₹ 150 अप्रैल 2020 आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग

विस्तार शिक्षा निदेशालय

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित
© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 53 **अप्रैल 2020** **अंक 4**

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
मिट्टी की जांच क्यों, कब और कैसे	✍ दीपक एवं ऊषा कौशिक	1
देसी कपास की अधिक पैदावार : उन्नत सस्य क्रियाएं	✍ नवीश कुमार कम्बोज, एन. के. यादव एवं संदीप कुमार	2
गर्मियों में शीघ्र बढ़ने वाली चारा फसलें	✍ सतपाल, दलविंदर पाल सिंह एवं नीरज खरौड़	3
पोपलर : उत्पादन तकनीक व कीट प्रबंधन	✍ विरेन्द्र दलाल एवं राजेश कथवाल	5
अनाज आधारित (बायोएक्टिव) यौगिकऔर उनके स्वास्थ्य लाभ	✍ हिमानी पुनिया, जयंती टोकस एवं पूनम मोर	7
बीज खरीदते समय ध्यान योग्य महत्वपूर्ण बातें	✍ सुनील कुमार, सतबीर सिंह जाखड़ एवं अनिल कुमार मलिक	8
बसन्तकालीन बुवाई हेतु गन्ने की उन्नतशील प्रजातियां	✍ सुधीर शर्मा, रमेश कुमार एवं लोकेश यादव	9
जीवाणु खाद: पोषक तत्वों का सस्ता स्रोत	✍ कौटिल्य चौधरी, राकेश कुमार एवं एस. के. शर्मा	10
खेजड़ी का घटता हुआ क्षेत्र : एक खतरा	✍ विरेन्द्र दलाल, आर. एस. ढिल्लों एवं के. एस. अहलावत	11
उर्वरक प्रयोग की सही विधि	✍ देवेंद्र सिंह जाखड़, देवराज एवं सुनील बैनीवाल	12
पॉलीहाऊस में सूत्रकृमि - समस्या एवं समाधान	✍ आदित्य, जे. एन. भाटिया एवं देवेन्द्र चहल	17
जैव ईंधन: एक नवीकरणीय स्रोत	✍ अभिलाष, विजय एवं रमन	18
कीटनाशक रसायनों का सुरक्षित प्रयोग	✍ जयलाल यादव एवं नरेन्द्र सिंह	20
मानव स्वास्थ्य और बाजरा	✍ सागर, संजय कुमार सनाढ्य एवं के. डी. सहरावत	21
हर कदम : कृषक महिलाओं के संग	✍ पूनम यादव, संतोष रानी एंव सूबेसिंह	22
बाल अपराध रोकने में - माताओं की भूमिका	✍ आरती कुमारी एवं शीला सांगवान	23
रंगाई की विभिन्न विधियां	✍ निशा आर्य एवं ललिता रानी	26
पॉलीहाऊस में सूत्रकृमि - समस्या एवं समाधान	✍ आदित्य, जे. एन. भाटिया एवं देवेन्द्र चहल	28
Soil Solarization: An Eco-friendly Approach to Management of Plant-parasitic Nematodes	✍ Vinod Kumar, Anil Kumar and Sardul Singh Mann	30
Green Manuring and their Significance in Agriculture	✍ Kuldeep Singh, Manjeet and Vikas Kumar	31
Integrated Disease Management in Cotton	✍ N. K. Yadav, Sandeep Kumar and Navish Kumar Kamboj	33
स्थाई स्तम्भ : मई मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

संपादक (अंग्रेज़ी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

मिट्टी की जांच क्यों, कब और कैसे

✍ दीपक[1] एवं ऊषा कौशिक
साईना नेहवाल कृषि प्रशिक्षण प्रौद्योगिकी केन्द्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जिस प्रकार मनुष्य एवं जानवरों को संतुलित आहार की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार फसलों के लिये भी संतुलित आहार (पोषक तत्वों) की आवश्यकता होती है। मिट्टी की बनावट बड़ी पेचीदा होती है और कोई किसान अपने वर्षों के अनुभव के बावजूद भी अपने खेत की उपजाऊ शक्ति का सही-सही अन्दाजा नहीं लगा सकता। अत्यधिक एवं असंतुलित उर्वरकों तथा कृषि रसायनों के प्रयोग से खेत की मिट्टी मृत हो रही है या दिनों दिन उत्पादन क्षमता घट रही है। इसलिए वर्तमान परिस्थितियों में फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि खेत की मिट्टी की जांच करवाई जाये और परिणामों के आधार पर उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का संतुलित रूप में प्रयोग सुनिश्चित किया जाये।

मिट्टी जांच की आवश्यकता : मिट्टी जांच से स्पष्ट पता चल जाता है कि भूमि में पोषक तत्वों की उपलब्धता कितनी है, मृदा में पोषक तत्वों की स्थिति क्या है, पोषक तत्वों की उपलब्धता कितनी है? पोषक तत्वों की कमी या अधिकता का पता चलने के बाद विशेषज्ञ की सलाहानुसार मिट्टी का उपचार कर खेत को उपजाऊ बनाया जा सकता है।

प्राय: मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों के आधार पर ही फसलों का चयन करना अधिक लाभप्रद रहता है क्योंकि सभी मृदाएं हर फसल उगाने के लिए उपयुक्त नहीं होतीं। मिट्टी की जांच से पता चलता है कि कौन-सा खेत किस फसल के लिए सबसे उपयुक्त है और कौन-सी फसल उगानी चाहिए। मिट्टी की जांच में भूमि के अम्लीय और क्षारीय गुणों की जांच की जाती है, ताकि पी.एच. मान के आधार पर उचित फसल को उगाया जा सके और भूमि सुधार किया जा सके। सभी फसलों के उचित बढ़वार/उत्पादन हेतु पी.एच. मान 6.5 से 7.5 सबसे उपयुक्त होता है। मिट्टी परीक्षण के आधार पर किसान उर्वरकों और रसायनों पर होने वाले अनावश्यक खर्च से बच सकता है।

मिट्टी जांच के लिए नमूना : मिट्टी जांच फसल कटाई के बाद शुष्क मौसम में नमूना लेना अधिक लाभदायक रहता है। फसल बोने या रोपाई करने के एक माह पूर्व खाद व उर्वरकों के प्रयोग से पहले ही मिट्टी परीक्षण करायें। ध्यान रखें कि खेत में उर्वरक या कोई जैविक खाद लगाए कम से कम 25-30 दिन हो गए हों अन्यथा परिणाम गलत हो सकता है। आवश्यकता हो तो खड़ी फसल में से भी कतारों के बीच से नमूना लेकर परीक्षण के लिए भेज सकते हैं ताकि खड़ी फसल में पोषण सुधार हेतु आवश्यक क्रिया-कलाप किये जा सकें। क्षारीय व लवणीय मृदा में फसल वृद्धि के समय जब सबसे अधिक लवण दिखाई दें तभी नमूना लेना चाहिए। इससे मृदा की सही दशा व स्थिति का पता चलता है। आमतौर पर तीन साल में एक बार मिट्टी का नमूना लेना ठीक रहता है परन्तु सघन खेती वाले खेतों का परीक्षण प्रति वर्ष करवाना चाहिए।

मिट्टी नमूना लेने का तरीका : खेत से नमूना लेने के लिए फावड़े या खुरपी से अंग्रेजी के V आकार का 15 सैंटीमीटर गहराई तक गड्ढा खोदकर इसकी मिट्टी अलग कर दें, फिर इसकी दीवार के साथ पूरी गहराई तक मिट्टी की समान मोटाई (लगभग 2.5 सैं.मी. मोटी) में मिट्टी की परत काटकर निकाल लें। एक एकड़ में 5 जगह से नमूना लिया जाना चाहिए। इन पांच जगह की मिट्टी को मिलाकर एक संयुक्त नमूना बनाया जाता है।

संयुक्त नमूना तैयार करने की विधि : एक खेत से लिये गये सभी नमूनों को एक बिल्कुल साफ सतह पर या कपड़े या पॉलीथीन शीट पर रखकर खूब अच्छी तरह मिलाकर एक समान कर लें। पूरी मात्रा को एक समान मोटाई में फैला लें तथा हाथ से चार बराबर भागों में बांट लें। आमने सामने वाले दो भाग हटा दें तथा शेष दो को फिर मिलाकर चार भागों में बांट दें। यह क्रिया तब तक दोहराते रहें जब तक मिट्टी की कुल मात्रा लगभग 500 ग्रा. न बच जाये। नमूने को कपड़े की थैली में भरकर नाम, खेत संख्या, फसल उगाने का ब्यौरा देकर प्रयोगशाला में जांच के लिए भेजें।

मिट्टी का प्रतिनिधि नमूना लेने में सावधानियां :

1. नमूना लेते समय सतह पर पड़ा हुआ कूड़ा, खरपतवार, गोबर आदि पहले ही हटा दें।
2. नमूना लेने के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले औज़ार, थैलियां आदि बिल्कुल साफ होने चाहिएं।
3. सामान्यत: मिट्टी की जांच के लिए नमूने 0-15 सैंटीमीटर की गहराई तक ही लेने चाहियें क्योंकि इसी गहराई तक फसलें पोषक तत्वों का अवशोषण करती हैं। अनाज, तिलहन, सब्जी, फूल, चारे और मौसमी फसल के लिए नमूना ऊपरी सतह (0-15 सैं.मी.) से घास-फूस, कंकड़-पत्थर आदि साफ करके नमूना लें। गहरी जड़ों वाली या दीर्घकालिक फसलें जैसे कि गन्ना या सूखे की स्थिति के तहत बोई गई फसलों के लिए नमूने की गहराई 30 सैं.मी. तक होनी चाहिए। वृक्षारोपण अथवा बागवानी के लिए मिट्टी के नमूने 4-5 जगहों से 0-30 सैंटीमीटर, 30-60 सैंटीमीटर तथा 60-90 सैंटीमीटर तक अलग-अलग लेने चाहिएं क्योंकि इनकी जड़ें काफी गहराई तक जाती हैं।
4. मिट्टी का रंग, ढलान, उपजाऊ शक्ति को ध्यान में रखते हुए भिन्न लगने वाले भागों से अलग-अलग नमूने लें। समस्याग्रस्त मिट्टी जैसे अम्लीय (तेज़ाब) व क्षारीय रेह के नमूने ऐसे स्थानों से लेने चाहिएं जहां फसल की वृद्धि अन्य स्थानों की तुलना में कम हो अथवा पोषक तत्वों की कमी के लक्षण अधिक हों। उस स्थान से नमूना न लें जहां पर खाद, उर्वरक, चूना, जिप्सम या कोई अन्य भूमि सुधारक रसायन तत्काल लगाया गया हो।
5. पेड़ों के नीचे, खाद के गड्ढों के आस-पास तथा खेत की मेढ़ों से लगभग 2 मीटर दूरी तक नमूने न लें।
6. ऊसर आदि की समस्या से ग्रस्त खेत या उसके किसी भाग का नमूना अलग से लें।
7. जहां तक सम्भव हो गीली मिट्टी का नमूना न लें अन्यथा उसे छाया में सुखाकर ही प्रयोगशाला में भेजें।
8. नमूनों को खाद के बोरों, दवाइयों, ट्रैक्टर आदि की बैटरी या अन्य किसी रसायन आदि से दूर रखें।
9. नमूना सिंचाई करने या बरसात या घास फूस जलाने के तुरन्त बाद न लें।

वर्तमान परिस्थितियों में फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि खेत की मिट्टी की जांच करवाई जाए। ◆

[1] वरिष्ठ प्रबंधक (कृषि), आर्यव्रत बैंक, उत्तर प्रदेश।

देसी कपास की अधिक पैदावार : उन्नत सस्य क्रियाएं

✍ **नवीश कुमार कम्बोज, एन. के. यादव एवं संदीप कुमार**
कपास अनुसन्धान केन्द्र, सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कपास हरियाणा में खरीफ की महत्वपूर्ण नकदी फसल है। इस फसल का अधिकतर क्षेत्रफल प्रदेश के सिरसा, फतेहाबाद, जींद, हिसार, भिवानी, महेन्द्रगढ़ तथा रेवाड़ी ज़िलो में है। देसी कपास में नरमे की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए सीमित सिंचाई वाली जगहों में भी इसकी खेती की जा सकती है। नरमा या बी.टी. नरमा के मुकाबले देसी कपास की खेती का लागत मूल्य कम होने की वजह से किसान इस फसल से अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। निम्नलिखित उन्नत सस्य कृषि क्रियाएं अपनाकर देसी कपास की अधिक पैदावार तथा मुनाफा प्राप्त किया जा सकता है।

उन्नत किस्में : अधिक पैदावार लेने के लिए चौ. च. सिं. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित देसी कपास की उन्नत किस्में एच डी 432, एच डी 324, एच डी 123, एच डी 107 तथा संकर किस्म ए ए एच 1 का चुनाव कर सकते हैं।

भूमि व खेत की तैयारी : रेतीली, लूणी तथा सेम वाली भूमि को छोड़कर सभी प्रकार की भूमि में इसकी खेती की जा सकती है। खेत की अच्छी तैयारी के लिए 3-4 जुताइयां काफी हैं। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी करनी चाहिए।

फसल चक्र : चना, सरसों, मेथी व गेहूँ की फसलों के बाद या खाली ज़मीन में देसी कपास की फसल की खेती की जा सकती है।

बिजाई का समय : देसी कपास की बिजाई का उपयुक्त समय अप्रैल माह के प्रथम सप्ताह से आखिरी सप्ताह तक है। परंतु देसी कपास की बिजाई मई के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। इसके बाद बोई गई फसल की पैदावार में कमी आ जाती है।

बीज की मात्रा :

रोएं उतारे बीज : 5.0 कि.ग्रा. प्रति एकड़
रोएंदार बीज : 6.0 कि.ग्रा. प्रति एकड़
संकर किस्म बीज : 1.2-1.5 कि.ग्रा. प्रति एकड़

नोट : ड्रिल द्वारा बीजने के लिए यदि रोएं उतारे बीज न उपलब्ध हों तो रोएंदार बीज को बोने से पहले बारीक मिट्टी, गोबर या राख में रगड़ लेने से बीज ड्रिल में से एक-सार निकलता है।

बीज उपचार : कपास की बिजाई से पहले हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा सिफारिश की गई निम्नलिखित दवाइयों से बीज का उपचार अवश्य करें। बेहतर परिणाम के लिए रोएंदार बीज का 6-8 घंटे तथा रोएं उतारे बीज का केवल 2 घंटे उपचार करें :

एमिसान	= 5 ग्राम
स्ट्रैप्टोसाईक्लिन	= 1 ग्राम
सक्सीनिक	= 1 ग्राम
पानी	= 10 लीटर
कपास का बीज	= 5.0-6.0 कि.ग्रा., रोएंदार बीज 6.0-8.0 कि.ग्रा.

जिन क्षेत्रों में दीमक की समस्या हो वहां उपर्युक्त उपचार के बाद बीज को थोड़ा सुखाकर 10 मि.ली. क्लोरपाईरीफॉस 20 ई.सी. व 10 मि.ली. पानी प्रति किलो बीज की दर से मिलाकर बीज पर छिड़कें व अच्छी तरह से मिलायें तथा बाद में 30-40 मिनट बीज को छाया में सुखा कर बिजाई करें।

जड़ गलन की समस्या वाले क्षेत्रों में ऊपर बताये गये उपचार के बाद बीज का 2 ग्राम बाविस्टिन प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से सूखा उपचार करें। यह उपचार 40-50 दिन तक ही फसल को बचा सकता है। बाद में लक्षण दिखाई देने पर सिफारिश-शुदा रसायनों से इसका उपचार करें।

सक्सीनिक तेज़ाब से उपचारित करने पर पौधे की जड़ें शीघ्र फैलती हैं जिससे फसल सूखे की हालत में अधिक नमी खींच पाती है।

बिजाई की विधि : देसी कपास के बीज को 4-5 सैं.मी. गहरा बोयें। कतार से कतार की दूरी 67.5 सैं.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। पूर्व से पश्चिम की दिशा में कतारों में बोई गई कपास उत्तर से दक्षिण दिशा में बोई गई कपास के मुकाबले अधिक पैदावार देती है। पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए बिजाई के 2-3 सप्ताह बाद कतारों में सिफारिश किए गये फासले से अधिक पौधे उखाड़ दें। एक जगह पर एक ही पौधा रखें। विरला करने के बाद पौधों की संख्या 20,000 प्रति एकड होनी चाहिए।

खाद व उर्वरक : देसी कपास को अधिक खाद की आवशकता नहीं होती परन्तु अच्छी पैदावार के लिए 45 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालना आवश्यक है। नाइट्रोजन वाली खाद की आधी मात्रा बौकी आने के समय (जुलाई अन्त) तथा आधी फूल आने के समय डालें।

यदि कपास, गेहूं के बाद बोई गयी है या कम उपजाऊ ज़मीन में बोई गयी है तो नाइट्रोजन वाली खाद की आधी मात्रा पौधों को बिरला करते समय देने की बजाय बिजाई पर दें। ज़िंक सल्फेट की पूरी मात्रा बिजाई के समय डाल देनी चाहिए। कम उपजाऊ ज़मीन में 38.0 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालने पर अच्छे परिणाम मिलते हैं। उर्वरकों की मात्रा मिट्टी परीक्षण के आधार पर घटाई बढ़ाई जा सकती है।

यूरिया का पत्तों पर छिड़काव : उपर्युक्त नाइट्रोजन की मात्रा में से 8 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड का यूरिया के घोल के रूप में छिड़काव लाभदायक रहता है। इस घोल में कीटनाशक दवाओं को भी मिला सकते हैं और फसल में फूल व टिंडे लगते समय इसका छिड़काव करें। हाथ से चलने वाले पंप के लिए 2.5 प्रतिशत यूरिया (5 कि. ग्रा. यूरिया 200 लीटर पानी) के घोल का छिडकाव करें।

पोटैशियम नाइट्रेट का छिड़काव : अधिक पैदावार व उच्च गुणवत्ता लेने के लिए फसल में फूल आने व टिंडे बनने के समय 1.0 प्रतिशत पोटैशियम नाइट्रेट (2 कि.ग्रा. पोटैशियम नाइट्रेट व 200 लीटर पानी) का पत्तों पर छिडकाव करें।

निराई-गुड़ाई : कपास की फसल में कतार से कतार की दूरी अधिक होने व शुरू की अवस्था में कपास के पौधों की बढ़वार कम होने के कारण खरपतवारों को पनपने के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है। इसलिए इस अवस्था में फसल को खरपतवारों से मुक्त रखना अत्यंत आवश्यक है। कपास की फसल के लिए 'जितनी गोडी- उतनी डोडी' कहावत प्रसिद्ध है अर्थात कपास की फसल में जितनी अधिक गुड़ाई करते हैं उतनी ही अधिक पैदावार मिलती है। देसी कपास में खरपतवार नियंत्रण के लिए 2-3 बार निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। पहली सूखी गुड़ाई कसोला से

(शेष पृष्ठ 06 पर)

गर्मियों में शीघ्र बढ़ने वाली चारा फसलें

✍ **सतपाल, दलविंदर पाल सिंह एवं नीरज खरौड़**
चारा अनुभाग, आनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

चारा आधारित फसलें पशुधन आधारित कृषि प्रणाली का महत्वपूर्ण घटक हैं। हरे चारे की उपलब्धता पशुधन पालन की उत्पादकता और लाभप्रदता निर्धारित करती है। दूध उत्पादन की कुल लागत का लगभग 60 प्रतिशत चारे की कीमत है। वर्तमान में खेती की गई चारा फसलों की उत्पादकता कम है, क्योंकि एक तरफ न्यूनतम उत्पादन संसाधनों का कम से कम ध्यान और आवंटन और दूसरी तरफ चारे के संसाधन विकास में शामिल हितधारकों को उत्पादन तकनीकों की गैर उपलब्धता। किसानों को चारा फसलों के उत्पादन पैकेजों के बारे में शिक्षित करने से निपटने की आवश्यकता है जैसे कि उचित उपज प्रजातियों, किस्मों और प्रबंधन तकनीकों के चयन के लिए चारे की पैदावार और मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना। मई और जून के महीने में हरे चारे की कमी होती है। गर्मियों की अवधि में चारे की फसलों की खेती चारा की कमी की भरपाई में सहायक हो सकती है। ज्वार, मक्की तथा लोबिया गर्मी मौसम की शीघ्र बढ़ने वाली चारे वाली फसलें हैं। इसकी खेती प्रायः सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। अगर लोबिया को ज्वार तथा मक्की के साथ उगाएं तो इन फसलों के चारे की गुणवत्ता भी बढ़ जाती है। गर्मियों में दुधारू पशुओं की दूध देने की क्षमता बढ़ाने के लिए हरा चारा अवश्य खिलाना चाहिए। ज्वार, मक्की तथा लोबिया के चारे में क्रमशः औसतन 8-10, 9-12 तथा 16-20 प्रतिशत प्रोटीन होती है।

ज्वार

ज्वार की उन्नत किस्में:

एस एस जी 59-3: यह हरियाणा के सिंचित व मैदानी क्षेत्रों के लिए सिफारिश की गई है। यह मीठी व अच्छे गुणों वाली किस्म है जिससे लम्बे समय तक हरा चारा मिलता रहता है, विशेषकर जब दूसरे चारों की कमी रहती है। यह किस्म मई से नवम्बर तक 3-4 कटाइयों में 300 क्विं./एकड़ हरे चारे की पैदावार देती है।

एच जे 541 : यह लम्बी, मीठी व हरे चारे के लिए उपयुक्त तथा एक-कटाई वाली किस्म है। अधिक प्रोटीन व अधिक पाचनशील शुष्क पदार्थ होने के कारण इसकी गुणवत्ता अच्छी है। इसके हरे चारे की औसत पैदावार 200-225 क्विं./एकड़ है। यह पकने तक हरी रहती है। यह 80 से 90 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच जे 513 : यह किस्म कड़वी के लिए भी बहुत उपयोगी है। इसके पत्ते चौड़े और लम्बे हैं। यह लम्बी, बिना मिठास वाली तथा एक-कटाई के लिए उपयुक्त किस्म है जिसकी हरे चारे की पैदावार 190-210 क्विं./एकड़ है। यह पकने तक हरी रहती है व पत्ते के रोगों व कीड़ों की प्रतिरोधी है। यह 80 से 85 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच सी 308: यह लम्बी, रसदार, पत्तेदार एवं एक-कटाई के लिए उपयुक्त किस्म है। इसके हरे चारे की औसत पैदावार 215 क्विं./एकड़ है। यह 85 से 95 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच सी 136: यह किस्म लम्बी, मीठी, रसदार तथा दो कटाइयां देने में सक्षम है और देर से पकती है। इसके पत्ते अधिक लम्बे व चौडे होते हैं जो पकने तक हरे रहते हैं। हरे चारे की औसत पैदावार 200-220 क्विं./एकड़ है। यह 90 से 95 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

भूमि व खेत की तैयारी : ज्वार की खेती वैसे तो सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है परन्तु अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए बढ़िया है। खरपतवार नष्ट करने तथा फसल की अच्छी पैदावार के लिए खेत को खूब अच्छी तरह तैयार करना चाहिए। सिंचित इलाकों में मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई और उसके बाद भी देसी हल से 2 जुताइयां (एक दूसरे के आर-पार) बिजाई से पहले अवश्य करनी चाहिएं।

बिजाई का समय: ज्वार की गर्मी की फसल 20 मार्च से 10 अप्रैल तक बो देनी चाहिए। यदि सिंचाई व खेत उपलब्ध न हो तो बिजाई मई के पहले सप्ताह तक की जा सकती है। बहु-कटाई वाली किस्में जैसे कि एस एस जी 59-3 किस्म इस मौसम में लगाने से अधिक गर्मी वाले समय में भी पशुओं को हरा चारा उपलब्ध हो जाता है और यह किस्म अन्य किस्मों की तुलना में हरा चारा लम्बे समय तक उपलब्ध कराती है।

बीज की मात्रा और बिजाई का तरीका: ज्वार के लिए 20-24 किलोग्राम व सुडान घास के लिए 12 से 14 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब 25 सैं.मी. के फासले पर कतारों में ड्रिल या पोरे की मदद से करें।

उर्वरक प्रबन्धन : कम वर्षा वाले व बारानी इलाकों में बिजाई के समय 20 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ दें। सारी खाद बिजाई से पहले कतारों में ड्रिल करें। अधिक वर्षा वाले या सिंचित इलाकों में 20 किलोग्राम नाइट्रोजन बिजाई के समय तथा 10 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के एक महीने बाद भी डालें। सुडान घास के लिए हर कटाई के बाद 10 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ देनी चाहिए। जिन खेतों में फास्फोरस की कमी हो वहां 6 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई से पहले डालें। 1

खरपतवार प्रबन्धन : ज्वार उगने के 15-20 दिन बाद या पहली सिंचाई के बाद, बत्तर आने पर एक बार निराई-गुड़ाई करें, दूसरी गुड़ाई बरसात में जब खरपतवारों का प्रकोप बढ़ जाए तब करें। इससे खरपतवार नियन्त्रण में रहते हैं तथा ज़मीन में नमी भी बनी रहती है। ज्वार में खरपतवारों की रोकथाम के लिए बिजाई के 7-15 दिन के अन्दर-अन्दर 200 ग्राम एट्राज़ीन (50 प्रतिशत घु.पा.) प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। ऐसा करके खरपतवारों को काफी हद तक रोका जा सकता है।

सिंचाई प्रबन्धन : मार्च-अप्रैल में बीजी गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 15-20 दिन बाद तथा आगे की सिंचाइयां 20-25 दिन के अन्तर पर करें। इस प्रकार लगभग 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। अधिक कटाई वाली फसल में हर कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें इससे फुटाव जल्दी व अधिक होता है।

कटाई प्रबन्धन : एक-कटाई वाली किस्मों की कटाई फूल आने पर करें। बहु-कटाई वाली चारा फसल में पहली कटाई बुवाई के 55-60 दिन बाद करें और तत्पश्चात प्रत्येक कटाई 40-45 दिन के अन्तराल पर करें। बहु कटाई वाली किस्मों की कटाई ज़मीन से 10-12 सैं.मी. ऊपर से करें ताकि फुटाव जल्दी हो।

मक्का

मक्का की उन्नत किस्में: अफरीकन टाल, विजय, मोती और जवाहर कम्पोज़िट

मिट्टी व खेत की तैयारी : मक्का की काश्त के लिए दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है। खेत की बढ़िया तैयारी के लिए 2-3 जुताइयां काफी हैं। दो क्रॉस हैरोइंग और लेवलिंग के बाद मिट्टी को पलटने वाला एक ऑपरेशन एक खरपतवार मुक्त और समतल खेत प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। यह पानी के ठहराव और नमी के तनाव के लिए अतिसंवेदनशील है।

बिजाई का समय : गर्मियों में मक्का की बुवाई मार्च महीने के आखिरी सप्ताह से लेकर अप्रैल के आखिरी सप्ताह तक कर सकते हैं जिससे इसका हरा चारा चारे की कमी वाले समय में उपलब्ध हो जाता है।

बीज की मात्रा व बिजाई का ढंग : मक्का एक बड़े आकार की बीज वाली फसल है और इसलिए, फसल की बीज दर बीज के आकार पर निर्भर करती है। आम तौर पर एक एकड़ में पौधों की उचित संख्या व बढ़वार के लिए 20-30 किलोग्राम बीज दर की सिफारिश की जाती है। बीज को 30-40 सैं.मी. पंक्ति से पंक्ति का फासला रखकर कतारों में बोना चाहिए।

उर्वरक : अच्छी बढ़वार के लिए 20 किलोग्राम शुद्ध नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें तथा 10 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के एक महीने बाद भी डालें। मिश्रित खेती में उर्वरक फसल की सिफारिश के अनुपात में ही डालें।

निराई-गुड़ाई : गर्मी में बोई गई फसल में एक निराई-गुड़ाई पहली सिंचाई देने के बाद बत्तर आने पर करें।

सिंचाई और जल निकास : मार्च-अप्रैल में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 15-20 दिन बाद करें। आगे की सिंचाइयां 12-15 दिन के अन्तराल पर करें। यह फसल पानी के ठहराव और नमी के तनाव के लिए अतिसंवेदनशील है।

कटाई व चारे की पैदावार : हरे चारे की अधिक पैदावार के लिए फसल रेशम अवस्था में (बुवाई के 60-75 दिनों के बाद) कटाई के लिए तैयार हो जाती है। समय से पहले कटाई यद्यपि अच्छी गुणवत्ता वाले चारे का उत्पादन करती है लेकिन उपज कम हो जाती है, जबकि देर से कटाई के कारण चारे की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके हरे चारे की पैदावार लगभग 180-250 क्विंटल प्रति एकड़ है।

लोबिया

लोबिया की उन्नत किस्म :

सी एस 88 : लोबिया की यह किस्म चारे की खेती के लिए सर्वोत्तम है। यह सीधी बढ़ने वाली किस्म है जिसके पत्ते गहरे हरे रंग के तथा चौड़े होते हैं। इसके बीज का रंग हल्का गुलाबी भूरा या हल्का भूरा होता है। यह किस्म विभिन्न रोगों व कीटों से मुक्त है। विशेषकर, पीले मौजेक विषाणु रोग के लिए। इस किस्म की बिजाई सिंचित एवं कम सिंचाई वाले क्षेत्रों में गर्मी तथा खरीफ के मौसम में की जा सकती है। इसका हरा चारा लगभग 55-60 दिनों में कटाई लायक हो जाता है। इसके हरे चारे की पैदावार लगभग 130-135 क्विंटल प्रति एकड़ है।

मिट्टी व खेत की तैयारी : लोबिया की काश्त के लिए दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है परन्तु रेतीली दोमट मिट्टी में भी इसे आसानी से उगाया जा सकता है। खेत की बढ़िया तैयारी के लिए 2-3 जुताइयां काफी हैं।

बिजाई का समय : लोबिया की बुवाई मध्य मार्च से लेकर जुलाई अन्त तक कर सकते हैं। गर्मियों में बिजाई का सबसे अच्छा समय मध्य मार्च से लेकर मई का पहला सप्ताह है, जिससे इसका हरा चारा चारे की कमी वाले समय में उपलब्ध हो जाता है।

बीज की मात्रा व बिजाई का ढंग : पौधों की उचित संख्या व बढ़वार के लिए 16-20 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ उचित रहता है। पंक्ति से पंक्ति का फासला 30 सैं.मी. रखकर पोरे अथवा ड्रिल द्वारा बिजाई करें। लेकिन जब मिश्रित फसल बोई जाए तो लोबिया के बीज की एक तिहाई मात्रा प्रयोग करें। बिजाई के समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। लोबिया के लिए सिफारिश किए गए राइजोबियम कल्चर से बीज का उपचार करके बिजाई करें।

उर्वरक : दलहनी फसल होने के कारण, लोबिया में नाइट्रोजन की अधिक आवश्यकता नहीं होती। फिर भी शुरू की अच्छी बढ़वार के लिए 10 किलोग्राम शुद्ध नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। बिजाई से पहले सिंचित इलाकों में 25 किलोग्राम फास्फोरस तथा बारानी क्षेत्रों में 12 किलोग्राम फास्फोरस पोरा या ड्रिल से डालें। मिश्रित खेती में उर्वरक फसल की सिफारिश के अनुपात में ही डालें।

निराई-गुड़ाई : गर्मी में बोई गई फसल में एक निराई-गुड़ाई पहली सिंचाई देने के बाद बत्तर आने पर करें।

सिंचाई और जल निकास : मार्च-अप्रैल में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 20-25 दिन बाद तथा मई में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 15-20 दिन बाद करें। आगे की सिंचाइयां 15-20 दिन के अन्तराल पर करें। इस तरह कुल मिलाकर 3-4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।

कटाई व चारे की पैदावार : लोबिया की हरे चारे के लिए कटाई 50 प्रतिशत फूल आने से लेकर 50 प्रतिशत फलियां बनने तक पूरी कर लेनी चाहिए। अन्यथा इसके बाद इसका तना सख्त व मोटा हो जाता है और चारे की पौष्टिकता व स्वादिष्टता दोनों ही प्रभावित होती हैं। गर्मियों में लोबिया के हरे चारे की पैदावार लगभग 130-135 क्विंटल प्रति एकड़ मिल जाती है। इसके हरे चारे को अकेले खिलाने की बजाए सूखी तूड़ी या ज्वार, मक्की के हरे चारे या इनकी कड़वी के साथ मिलाकर खिलाएं। ◆

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951 (ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स + फंजीसाइड्स + हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

पोपलर : उत्पादन तकनीक व कीट प्रबंधन

✍ विरेन्द्र दलाल एवं राजेश कथवाल[1]
वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पोपलर शब्द को लैटिन भाषा में ''पोपुलस'' बोलते हैं क्योंकि रोमन काल में यह वृक्ष अकसर सामुदायिक जगहों पर बहुतायत में पाया जाता था। यह वृक्ष उत्तरी गोलार्द्ध के नॉर्दन अमेरिका, नॉर्थ अफ्रीका और यूरोप का जन्मझ प्रणपाती पौधा है। भारत में इसका आगाज़ 1950 में हुआ और आज यह उत्तर पश्चिम भारत में कृषि वानिकी का मुख्य पौधा है।

किसानों के लिए जो पोपलर की खेती करना चाहते हैं जनवरी-फरवरी के महीने काफी उपयुक्त हैं, खासतौर पर हरियाणा के उत्तरी ज़िले : यमुनानगर, कुरूक्षेत्र, अम्बाला, पंचकुला व करनाल, क्योंकि ये ज़िले पोपलर लगाने के लिए सबसे उपयुक्त हैं या फिर जहां लवणीय समस्या न हो, नहरी पानी की कमी न हो और खेत की भूमि दोमट से बलुई दोमट हो, वहां पर भी पोपलर लगा सकते हैं।

किसान हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार के वानिकी विभाग से सिफारिश किए गए पोपलर के क्लोन जैसे जी-3, जी-48, एस-7 व सी-15 की बुकिंग करा सकते हैं, ताकि समय पर पौधारोपण हो सके।

पौधशाला : पोपलर की नर्सरी के लिए बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जैविक कार्बन की मात्रा अधिक हो, अच्छी रहती है। क्यारियां सिंचाई नाली के दोनों तरफ व नाली से नीची रखें। एक साल के पौधे की कलमें नर्सरी के लिए अच्छी होती हैं। कलमों की लम्बाई 20 से 25 सैं.मी. तथा गोलाई 3 से 4 सैं.मी. होनी चाहिए और प्रत्येक कलम पर 3 से 4 स्वस्थ आंखें अवश्य होनी चाहिएं। कलम बनाते समय, कलम का ऊपरी भाग आँख के थोड़ा ऊपर से तिरछा काट लें व निचले भाग को गोल काटें। कटी हुई कलमों को लगाने के समय गीली बोरी में लपेटकर छाया में रखें, ताकि ये सूख न जाएं। यदि नर्सरी में दीमक की समस्या है तो कलमें लगाते समय कीटनाशक दवाई का घोल बनाकर प्रयोग में लाएं। कलम को ज़मीन में इस प्रकार लगाएं कि उसका 2/3 हिस्सा ज़मीन में तथा 1/3 तिरछे सिरेवाला भाग ज़मीन से बाहर रहे (कलम की कम-से-कम एक आँख ज़मीन से ऊपर अवश्य रखें)।

क्यारियों में कलमें पंक्ति-से-पंक्ति और कलम-से-कलम 60 सैं. मी. की दूरी पर लगाएं। कलम लगाने के तुरन्त बाद क्यारियों में सिंचाई ज़रूरी है, ताकि कलमों को निर्जलीकरण से बचाया जा सके और कलमों में फुटाव अच्छे से हो सके। कलम पौधे के रूप में अच्छी तरह से बढ़े, इसके लिए ज़रूरी है कि कलम पर ही शाखा रहे व अन्य शाखाओं को काट दें। वर्षा आरम्भ होने पर 25 ग्राम यूरिया प्रति पौधा दें। एक वर्ष के बाद जब पौधे 5 से 6 मीटर के हो जाएं तो वे पौधा रोपण के लिए उपयुक्त हैं।

खेतों में पौधारोपण : पोपलर के पौधे का पौधारोपण फरवरी माह तक उचित रहता है। इसके बाद तापमान बढ़ने लगता है और पौधा ठीक से पनप नहीं पाता। पौधारोपण करने से एक महीने पहले औगर की सहायता से तीन फुट गहरे गड्ढे खोदकर मिट्टी बाहर निकाल दें।

पौधरोपण करने से पहले कुछ जानने योग्य बातें : पौधरोपण करने से पहले किसान पौधारोपण अंतराल निश्चित करें। मेढ़ों पर कतारों में लगाते समय पौधे-से-पौधे की दूरी 3 मीटर रखें, सिंचाई नाली के दोनों तरफ कतारों में लगाते समय पौधे-से-पौधे की दूरी 2 मीटर रखें, खेत में अकेले पोपलर लगाना है तो पौधे-से-पौधे और कतार-से-कतार की दूरी 4 मीटर रखें और यदि कृषिवानिकी के तरीके को अपनाते हैं तो कतार-से-कतार व पौधे-से-पौधे की दूरी 5 x 4 मीटर रखें, क्योंकि पोपलर की अच्छी बढ़ोत्तरी के लिए 20-25 वर्गमीटर ज़मीन प्रति वृक्ष होनी चाहिए तथा कतारें उत्तर-दक्षिण करने से साथ लगने वाली फसलों को धूप ज़्यादा मिलती है। छोटे किसान जो फसलों की पैदावार पर ज़्यादा निर्भर रहते हैं, वे कृषिवानिकी में कतार-से-कतार 10-15 मीटर व पौधे से पौधा दूरी 2.5 मीटर रखें।

ऊपर सतह की 1.5 फुट मिट्टी में 5 किलोग्राम गोबर की खाद अच्छी तरह मिलाकर तैयार रखें। पौधारोपण के लिए पौधा पौधशाला से जड़ सहित उखाड़ कर लगाएं। अगर पौधशाला ज़्यादा दूरी पर है तो पौधों के ऊपरी भाग व जड़ों को गीली बोरियों से लपेटकर लाना चाहिए ताकि पौधों की नमी बनी रहे।

पौधारोपण के लिए पहले से खोदे गए गड्ढों में 3 फुट की गहराई तक सीधा रखें और मिट्टी व खाद के मिश्रण को धीरे-धीरे गड्ढे में भर दें व पैरों से अच्छी तरह दबा दें ताकि मिट्टी में हवायुक्त स्थान न रहे। पौधे को गड्ढे में लगाने के बाद पानी अवश्य दें ताकि मिट्टी नीचे तक नम हो जाए।

पौधों की देखभाल : बरसात के मौसम से पहले 7-10 दिनों के अंतराल पर पानी देना चाहिए। पोपलर की बढ़ोत्तरी मुख्य तौर पर अप्रैल से सितम्बर के महीनों में होती है। जुलाई और सितम्बर के महीनों में सिंचाई के साथ 100 ग्राम यूरिया की मात्रा प्रति पौधा के हिसाब से हर वर्ष डालें। जहां पोपलर के साथ कृषि फसलें लगाई हैं वहां फसलों में डाली गई यूरिया पोपलर के लिए भी काफी रहती है।

अप्रैल से अगस्त के महीनों में दो वर्ष तक की आयु के पौधों के एक-तिहाई निचले भाग पर निकल रही कलियों को बोरी के टुकड़ों द्वारा कोमलता से रगड़ कर साफ कर देना चाहिए। तीसरे से छठे साल तक के पौधे के निचले एक-तिहाई से आधे हिस्से तक शाखाएं काट देनी चाहिएं। कटाई तने के बिल्कुल पास से हो तथा उसमें बोर्डएक्सपेस्ट या चिकनी मिट्टी एवं गोबर का लेप लगाएं। समय-समय पर किसान अपने पौधों का निरीक्षण करते रहें। पौधों की जड़ों व तनों को किसी भी प्रकार के कटाव से बचाएं व रोगग्रस्त पौधों को जड़ों समेत निकालकर नष्ट कर दें।

पोपलर से संबन्धित कीट व प्रबंधन पोपलर का पौधा अपनी तेज़ बढ़वार व इसकी लकड़ी का औद्योगिक प्रयोग जैसे माचिस की तिल्लियां, प्लाईवुड, पार्टिकलबोर्ड, गत्ता, कैरेट, गुद्दा, पैकिंग सामग्री, फूस, फर्नीचर, तख्त व ईंधन लकड़ी आदि के प्रयोग में आने की वजह से यह हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश, उत्तराखण्ड, जम्मू-काश्मीर व हिमाचल प्रदेश के किसानों द्वारा बहुतायत में लगाया जाता है। डॉ. ढिल्लों के अनुसार इसमें औसत वार्षिक शुद्ध लाभ 54,753/- रुपये प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष (शुद्ध खेती के रूप में) व 72,480/- रुपये प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष (अन्त: फसल के रूप में), जिसका लाभ : लागत अनुपात 1.9 : 1 व 2.13 : 1 है। अत: इसकी महत्वपूर्णता को देखते हुए इसके कीट प्रबन्धन पर भी ध्यान देना ज़रूरी है ताकि किसानों को इसका उचित लाभ मिल सके।

पत्ता खाने वाले कीट (लीफ डीफोलियेटर) : ये कीट मुख्य रूप से दो तरह के होते हैं-क्लोस्टिराफुलग्रीटा व क्लोस्टिराकपरियाटा। ये कीट पूरे भारत में पाए जाते हैं। मादा कीट अपने अण्डे पत्ते के नीचे के भाग पर देती

[1]रामधन सिंह बीज फार्म, चौ.च.सिंह. ह.कृ.वि. हिसार।

है, जिनकी संख्या लगभग 200 से 300 तक हो सकती है। इस कीट का जीवन-चक्र 19 से 20 दिनों का होता है। इसकी साल भर में 8 से 9 पीढ़ी पैदा होती हैं। यह कीट लारवा स्टेज पर ही पौधे के लिए हानि कारक होता है। इस कीट का प्रभाव मार्च-अप्रैल से प्रारंभ होता है और अक्तूबर के पहले पखवाड़े तक रहता है। यह कीट अपनी अनुकूल परिस्थितियों में पोपलर के पत्तों को 60 से 100 प्रतिशत् तक प्रभावित कर सकता है।

प्रबंधन :

1. पोपलर के प्रतिरोधी क्लोन का प्रयोग करें।
2. कीटों के अण्डों को इक्कट्ठा करें व उन्हें नष्ट कर दें।
3. दिसम्बर माह में खेत को 2 से 3 बार जोतें, क्योंकि इस कीट का प्यूपा बाहरी वातावरण के सम्पर्क में आने से नष्ट हो जाता है।
4. नीमसीडरस का 0.1 प्रतिशत् की दर से प्रयोग करें।
5. परभक्षी कीट को बढ़ावा दें।

छाल खाने वाली सूण्डी (बार्क ईटिंग कैटरपिल्लर) : इस समूह की मादा कीट अण्डे गुच्छों में व पेड़ की छाल के अन्दर की तरफ देती है और तीन-से-चार दिन के अन्दर इन अण्डों से लारवा निकल आते हैं और जून-जुलाई तक ये लारवा परिपक्व हो जाते हैं। इस कीट से ग्रस्त पेड़ की पहचान आसानी से की जा सकती है। इसमें तने की छाल के चारों ओर रेशमी जाल बन जाता है। इस कीट के लारवा व प्रौढ़ दोनों ही स्टेज पौधों के लिए हानिकारक है, क्योंकि ये छाल को खाने के साथ-साथ तनों में अन्दर की तरफ छेद कर देते हैं। यह छेद 'स' आकार की सुरंग के रूप में होता है। इस कीट का लारवा 9 से 11 महीनों तक छाल को रात के समय में खाता है।

प्रबंधन :

1. प्रभावी छाल व टहनी को जला दें।
2. सघन पौधा-रोपण से बचें अर्थात् पौधे-से-पौधे की दूरी कम-से-कम 8 से 10 फुट हानी चाहिए।
3. निरन्तर खेत की सफाई व जुताई करें।
4. गर्मी के महीनों में निरन्तर सिंचाई होनी चाहिए।
5. लाईट-ट्रैप का प्रयोग कर के इस कीट से छुटकारा पाया जा सकता है।
6. पोपलर का पौधा-रोपण किसी बाग के नज़दीक व बाग के साथ नहीं होना चाहिए।
7. कैरोसीन या पैट्रोल से रूई के टुकड़े को भिगोकर छेद में डाल दें और छेद को चिकनी मिट्टी से बंद कर दें ताकि कीड़ा अन्दर ही नष्ट हो जाए।

तना छेदक (स्टैम बोरर) : पोपलर में तना छेदक कीट का प्रकोप 3 साल तक के पौधों में बहुत अधिक होता है। यह कीट पोपलर के मुलायम तने को बेध कर इसकी पिथ में गैलरी बना लेता है और कई बार तो यह पौधों की जड़ों तक प्रभाव डाल देता है। इस कीट का लारवा एक पौधे में दो-से-तीन समानान्तर गलियारे बना डालता है। यह कीट मार्च-से-अक्तूबर महीने तक सक्रिय रहता है और नवम्बर-से-फरवरी माह में यह सुप्त अवस्था में चला जाता है। यह 2 साल में अपना जीवन-चक्र पूरा करता है।अत: ज्योंही आप को पोपलर के तने के छेद में बारीक बुरादा नज़र आए तो समझ जाएं कि उस पेड़ पर तना-छेदक कीट का प्रकोप हुआ है।

प्रबंधन :

1. हमें निरन्तर खेत की जांच करते रहना चाहिए।
2. हमें विकल्प पोषक पौधा-रोपण प्रणाली (ऑल्टरनेट होस्ट प्लांट) से बचना चाहिए।
3. इस कीट से ग्रस्त शाखाओं को काट दें, ताकि कीट मुख्य तने तक ना पहुंच पाए।
4. कैरोसीन या पैट्रोल से रूई के टुकड़े को भिगोकर उस छेद में डाल दें और छेद को चिकनी मिट्टी से बंद कर दें ताकि कीड़ा अन्दर ही नष्ट हो जाए।
5. लोहे की तार को छेद में डालकर कीट को मारा जा सकता है।
6. पोपलर के प्रतिरोधी क्लोन 'जी-48' का प्रयोग करें।

उत्पादन व बिक्री : पोपलर 6-8 वर्षों में 90 से 100 सैं.मी. गोलाई का हो जाता है, जिसमें 3-6 क्विंटल लकड़ी होती है। हरियाणा में यमुनानगर, अम्बाला, करनाल व पानीपत में कुछ महत्वपूर्ण पोपलर का सट्टा बाज़ार और डिपो हैं। किसान अपने उत्पाद का विवरण स्थानीय अख़बार में देकर खुली बोली द्वारा बेच सकता है। किसान नज़दीकी लकड़ी के आरों व टालों पर जाकर अपने उत्पाद के बारे में बताएं तथा कीमतों का जायज़ा लें और उचित कीमत पर अपने उत्पाद को बेचें। अगर लकड़ी के बाज़ार में कुछ समय के लिए कमी हो तो घबराहट में अपने वृक्षों को न बेचें और अच्छी कीमत का इंतज़ार करें। ◆

(पृष्ठ 02 का शेष)

पहली सिंचाई से पहले करें तत्पश्चात् हर सिंचाई या वर्षा के बाद समायोज्य कल्टीवेटर से निराई- गुड़ाई करें।

बिजाई से पहले ट्रेफ्लान 48 ई.सी. (ट्राईफ्लुरालिन) की 800 ग्राम मात्रा या बिजाई के तुरंत बाद 2-3 दिन के अन्दर स्टॉम्प 30 ई.सी. (पेंडीमेथालिन) की 2.0 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से सांठी, कोंधरा, सांवक व मकड़ा खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण हो जाता है।

कपास में बिजाई के 40-45 दिन बाद खरपतवारों के नियंत्रण के लिए सूखी गुड़ाई के पश्चात ट्रेफ्लान 48 ई.सी. (ट्राईफ्लुरालिन) 800 ग्राम प्रति एकड या स्टॉम्प 30 ई.सी. (पेंडीमेथालिन) को 1.25 लीटर प्रति एकड के 200-250 लीटर पानी में घोल से उपचार के पश्चात् सिंचाई करने से भी वार्षिक खरपतवारों का उचित नियंत्रण किया जा सकता है।

सिंचाई : देसी कपास में वर्षा के हिसाब से 3 से 4 सिंचाई की आवश्कता होती है। पहली सिंचाई जितनी देर से की जाये अच्छी है, परंतु फसल को नुकसान नहीं होना चाहिए। पहली सिंचाई देर से करने पर जड़ों का विकास अच्छा होता है जोकि पौधे को गिरने से बचाता है तथा अधिक गहराई से पानी सोखने में समर्थ बनाता है। शेष सिंचाइयां 2 या 3 सप्ताह के अंतर पर करनी चाहिएं। फूल और फल आते समय नमी के अभाव में फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है अत: इस समय फसल में सिंचाई अवश्य करें। आखिरी सिंचाई एक तिहाई टिंडों के खुलने पर कर दें। इसके बाद कोई सिंचाई न करें।

चुगाई व उपज : देसी कपास सितम्बर के तीसरे सप्ताह में चुगने के लिए तैयार हो जाती है। इसकी चुगाई 8-10 दिन के अन्तराल पर करते रहें अन्यथा कपास नीचे गिर कर खराब होने का खतरा बना रहता है। मंडियों में अच्छे दम लेने क लिए कपास की साफ व सूखी चुगाई करें। उपर्युक्त उन्नत सस्य कृषि क्रियाएं अपनाकर किसान 10-12 क्विंटल प्रति एकड़ उपज प्राप्त कर सकते हैं। ◆

अनाज आधारित (बायोएक्टिव) यौगिक और उनके स्वास्थ्य लाभ

✍ हिमानी पुनिया, जयंती टोकस एवं पूनम मोर[1]
जैव-रसायन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भोजन की आवश्यकता, जो व्यक्तिगत पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति में योगदान देती है और ग्रह की स्थिरता के लिए, उपभोक्ता द्वारा खाद्य पदार्थों के पोषण मूल्य और उत्पत्ति की जागरूकता के परिणामस्वरूप बढ़ रही है। उनमें से, जैवसक्रिय अनाज और उनके खाद्य पदार्थ हैं, जो पिछले दशक से महत्वपूर्ण हैं। अनाज, बायोएक्टिव घटकों (फाइटोकेमिकल्स और एंटीऑक्सीडेंट) का एक अद्वितीय मिश्रण हैं। अनाज व उनके उत्पादों की बढ़ती खपत, कई पुरानी बीमारियों के कम जोखिम से जुड़ी हुई है। बायोएक्टिव यौगिक, खाद्य पदार्थों में पाए जाने वाले अतिरिक्त पौष्टिक तत्व होते हैं, जो चयापचय प्रक्रियाओं को संशोधित करने में सक्षम होते हैं और जिसके परिणामस्वरूप बेहतर स्वास्थ्य का स्तर होता है लेकिन मानव शरीर के लिए इनका कोई अन्य उपयोग नहीं होता। यह विभिन्न रासायनिक संरचनाओं और प्रकृति में वितरण के साथ- साथ यौगिकों (पॉलीफेनोलिक यौगिकों, कैरोटेनोइड, टोकोफेरोल, फाइटोस्टेरोल, और ऑर्गोसोल्फुर यौगिकों) को, एक अत्यंत विषम वर्ग शामिल करते हैं। अनाज के छिलके/रोगाणु अंश में बायोएक्टिव यौगिकों का बहुमत होता है। अनाज और उनके उत्पादों की नियमित खपत से पुरानी बीमारियों जैसे टाइप 2 मधुमेह, हृदय रोग और कैंसर के जोखिम कम हो जाते हैं। परिष्कृत अनाज की तुलना में, अनाज व उनके खाद्य पदार्थों में, सभी आवश्यक भाग होते हैं (ब्रान, एंडोस्पर्म और रोगाणु)। अनाज की बाहरी परत में, आंतरिक भागों की तुलना में बायोएक्टिव यौगिकों (फेनोलिक यौगिकों, फाइटोस्टेरोल और कैरोटीनोइड) के उच्च स्तर होते हैं। लिग्नांस, एल्काइल-रिसोरसिनोल्स और अनाज के फेनोलिक एसिड का मनुष्यों में चयापचय और अवशोषण किया जा सकता है और सुरक्षात्मक प्रभावों के तहत, शारीरिक परिवर्तनों को, प्रेरित किया जा सकता है।

सम्पूर्ण अनाजों में जैव सक्रिय योग : अनाजों के अद्वितीय बायोएक्टिव यौगिक एवम फलों और सब्जियों के यौगिकों की एक साथ खपत होती है। अनाजों में प्रमुख बायोएक्टिव यौगिक, फेनोलिक, फाइटोस्टेरॉल, फाइटिक अम्ल, आहार फाइबर (मुख्य रूप से बीटा-ग्लुकन), लिग्नान, गामा-ओरीजनल्स, सिनामीक अम्ल, फेरीलिक अम्ल एवेंथ्रामैमाइड, इनोसिटोल और बेटेन हैं। कुछ बायोएक्टिव यौगिक कुछ अनाजों के लिए काफी विशिष्ट हैं, उदाहरण के लिए, ओवन में एवेंथ्रामराइड और सैपोनिन, जई और जौ में बीटा ग्लुकन, चावल में गामा-ओराइज़नॉल और राई में अल्कलाईरेसोर्सीनॉल। हालांकि, अन्य अनाजों में भी ये जैव सक्रिय यौगिक होते हैं, परंतु अपेक्षाकृत बहुत कम मात्रा में होते हैं। अनाजों में महत्वपूर्ण बायोएक्टिव यौगिक निम्नलिखित हैं:

फेनोलिक यौगिक :

1. फेनोलिक यौगिकों में एक या अधिक सुगंधित अंगूठ होते हैं, जिनमें एक या अधिक हाइड्रोक्साइल समूह होते हैं। इन्हें फेनोलिक अम्ल, फ्लैवोनोइड्स, स्टिल्बेन, क्यूमारिन और टैनिन के रूप में, वर्गीकृत किया जाता है।
2. ये माध्यमिक चयापचयों (मेटाबोलाइट्स), पौधों के प्रजनन और विकास में, आवश्यक भूमिका निभाते हैं।
3. इसके रोगजनकों और परजीवियों के खिलाफ, रक्षा तंत्र के रूप में कार्य करते हैं।
4. पौधे के रंग में भी इनका योगदान है।
5. इसके अलावा, हमारे आहार में, फेनोलिक यौगिक, उनकी अत्यधिक एंटीऑक्सीडेंट क्षमता के कारण, स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं।

पॉलीफेनॉल में, विवो में कहीं अधिक लाभ जैसे अन्तःअस्तर और अभिज्वाल्य विरोधी गुण, बहुकालीन बीमारियों का कम जोखिम इत्यादि हो सकते हैं। यूके में, हृदय रोग के जोखिम को कम करने के लिए, सार्वजनिक स्वास्थ्य अनुशंसाओं द्वारा, अपने आहार में, ओट्स और ओट आधारित उत्पादों को शामिल करने का सुझाव दिया गया है।

फेनोलिक एसिड : फेनोलिक एसिड, बेंजोइक और दालचीनी एसिड के व्युत्पन्न होते हैं, जो सभी अनाज में मौजूद होते हैं। ज्वार और बाजरा में, फेनोलिक एसिड की विस्तृत विविधता होती है। फेनोलिक एसिड, अनाज में, मुक्त और बाध्य दोनों रूपों में होते हैं। बीज-कोष की बाहरी परत में फ्र-फेनोलिक एसिड होते हैं। अनाज में प्रमुख फेनोलिक एसिड, फेरिलिक एसिड और पी-क्यूमरिक एसिड होते हैं। फेरिलिक एसिड, अनाज में पाए जाने वाले, सबसे प्रचुर मात्रा में हाइड्रॉक्सीसिनामी एसिड होता है। गेहूं की ऊपरी परत, फेरिलिक एसिड का अच्छा स्रोत है, जिसमें एंटीऑक्सीडेंट गुण होते हैं, जो मुक्त कणों और अस्थिरता से निपटने के लिए और कीड़ों - जानवरों द्वारा खपत को रोकता है। गेहूं के अनाज में सूखे वज़न के आधार पर, 0.8-2 ग्राम प्रति किलोग्राम फेरिलिक एसिड होता है, जो कुल पॉलीफेनॉल का 90 प्रतिशत होता है। क्यूमरिक एसिड, दालचीनी एसिड के हाइड्रोक्साइल डेरिवेटिव होते हैं और पी-क्यूमरिक एसिड, अनाज कर्नेल के केंद्र में, सबसे कम मात्रा में होता है और इसकी मात्रा बाहरी परतों की ओर बढ़ जाती है। इसमें एंटी-ट्यूमर गतिविधि भी होती है।

फ्लवोनोइड्स : फ्लवोनोइड्स की संरचना सी 6-सी 3-सी 6, कंकाल के साथ, यौगिकों के रूप में होती है जिसमें दो सुगंधित छल्ले होते हैं, जो तीन कार्बन से जुड़े होते हैं। ज्वार में फ्लेवनॉयड्स की सबसे अधिक किस्में है। जौ को छोड़कर, अनाज में कम मात्रा में फ्लैवोनोइड्स होते हैं, जिसमें कैटेचिन और प्रो-साइनिडिन ही औसत दर्जे के होते हैं। फ्लवोनोइड्स में एंटीऑक्सीडेंट, एलर्जी विरोधी, कैंसरजन्य विरोधी और आमाशय सुरक्षात्मक गुण हैं।

लिग्नान : लिग्नान, पॉलीफेनोलिक बायोएक्टिव यौगिक होते हैं, जो फ्लेक्स बीजों, मक्का, जई, गेहूं और राई जैसे सम्पूर्ण अनाज में मौजूद होते हैं। लिग्नानों में, मज़बूत एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि और कमज़ोर ओस्ट्रोजेनिक गतिविधि होती है, जो उन्हें स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और पुरानी बीमारियों से निपटने में, अद्वितीय और उपयोगी बनाती है। लिग्नान कोलन कैंसर कोशिका के विकास को भी रोकता है।

कैरोटीनॉयड : कैरोटेनोड्स पीले, नारंगी और लाल रंगों के साथ, प्रो-विटामिन और एंटीऑक्सिडेंट्स के रूप में, सबसे व्यापक वर्णक होते हैं। पौधों, सूक्ष्मजीवों और जानवरों में, 600 से अधिक, विभिन्न कैरोटीनोइड होते हैं। अनाजों में, आम तौर पर पाए जाने वाले, कैरोटीनोइड,

[1]भाषा एवं हरयाणवी संस्कृति विभाग, चौ.च.सिंह. ह.कृ.वि. हिसार।

ल्यूटिन, जीएक्सैंथिन, बीटा-क्रिप्टोक्सैंथिन, बीटा कैरोटीन और अल्फा कैरोटीन होते हैं। ल्यूटीन, गेहूं में मौजूद है, जिसके बाद जेक्सैंथिन और बीटा क्रिप्टोक्सैंथिन है। चावल की ऊपरी परत में ल्यूटिन और जीएक्सैंथिन होता है, जो आंखों की दृष्टि में सुधार करता है। मक्का, सूखे वजन के आधार पर, 11 माइक्रो ग्राम प्रति किलोग्राम कैरोटीनोइड के साथ, सबसे अच्छा स्रोत है। कैरोटीनोइड, अनाज के भीतर, समान रूप से वितरित है एवम एंडोस्पर्म में महत्वपूर्ण मात्रा होती है। कैरोटेनोइड्स अनाज के आटे में रंग प्रदान करते हैं।

फाइटिक अम्ल : फाइटिक एसिड को इनोजिटोल हेक्साफॉस्फेट (आईपी 6) के रूप में भी जाना जाता है। यह कुल, कर्नेल फॉस्फोरस का 70 प्रतिशत से अधिक भाग होता है। फाइटिक एसिड, मुख्य रूप से पूरे अनाज के ब्रैन अंश में स्थित है, खासकर एल्यूरॉन परत के भीतर। मकई में, आईपी 6 ज़्यादातर रोगाणु अंश में पाया जाता है। पौष्टिक रूप से, सम्पूर्ण अनाज से लिया गया फाइटिक एसिड नकारात्मक माना जाता है, क्योंकि यह ज़िंक, लौह, कैल्शियम और मैग्नीशियम जैसे खनिजों को बांध कर रखता है, इस प्रकार अपनी आंतों में, इन घटकों की जैव उपलब्धता को सीमित करता है।

फाइटोस्टेरोल : सब्जियों की तुलना में, अनाज उत्पाद पौधे , स्टेरोल के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। मानव आहार में, पौधे स्टेरोल का सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक स्रोत, तेल और मार्जरीन हैं। वे सीरम कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करते हैं और कोलन कैंसर को रोकने में फायदेमंद होते हैं।

गामा-ओरिजनल : गामा-ओरिजनल चावल-ब्रैन तेल का, एक घटक है। पूरे अनाज चावल में इसकी मात्रा 18-63 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम (सूखा वजन के आधार पर) है। चावल के ब्रैन में, इसकी एकाग्रता चावल, की किस्म, पिसाई समय और स्थिरीकरण प्रक्रिया और निष्कर्षण विधियों के आधार पर, 185-421 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम है। गामा-ओरिजनल में एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि है। यह कोलेस्ट्रॉल अवशोषण और प्लेटलेट एकत्रीकरण घटने से भी जुड़ा हुआ है।

बीटा ग्लूकान : बीटा ग्लूकान, जौ और जई कर्नेल के एंडोस्पर्म व एल्यूरॉन परत की सेल दीवारों का polysaccharide हैं। जौ में, वे एंडोस्पर्म में केंद्रित होते हैं जबकि जई में वे एल्यूरॉन परत में केंद्रित होते हैं। बीटा ग्लूकान, राई (1-2%) और गेहूं (1% से कम) में कम मात्रा में और जौ (3-11%) और जई (3-7%) में, उच्चतम मात्रा में पाए जाते हैं। मकई, ज्वार, चावल और अन्य अनाज में कम मात्रा में मौजूद हैं। बीटा ग्लूकान, सीरम और प्लाज़्मा कोलेस्ट्रॉल के स्तर को, कम करने के साधन के रूप में पदोन्नत किया गया है।

स्वास्थ्य लाभ

कॉलन कैंसर की रोकथाम में जैवसक्रिय यौगिक : अनाज में, अधिकांश एंटीऑक्सीडेटिव बायोएक्टिव यौगिक बंधे होते हैं और कोलन को बरकरार रखने के लिए, गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल पाचन से पलायन हैं, जहां वे एंटीऑक्सीडेंट वातावरण प्रदान करते हैं। ये एंटीऑक्सीडेटिव बायोएक्टिव यौगिक, अघुलनशील रूप में होते हैं और कोशिका की दीवार से बंधे होते हैं। चूंकि सेल दीवार सामग्री को पचाना मुश्किल होता है, इसलिए वे ऊपरी जठरांत्रिय पाचन से बचते हैं और अंत में बड़ी आंत तक

(शेष पृष्ठ 09 पर)

बीज खरीदते समय ध्यान योग्य महत्वपूर्ण बातें

✍ **सुनील कुमार, सतबीर सिंह जाखड़ एवं अनिल कुमार मलिक**[1]
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

देश के खाद्यान्न उत्पादन में उत्तम गुणवत्ता वाले बीजों का विशेष महत्व है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि यदि किसान अधिक उपज देने वाली किस्मों के बेहतर गुणवत्ता वाले बीजों का उपयोग करें तो कृषि उत्पादन 20 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। हरियाणा के किसान जो अधिक उपज वाली प्रजातियों को अपनाने के लिए देश में अगुआ रहे हैं उन्हें प्रमाणित बीज के उत्पादन में अभी काफी कुछ करना है। उन्नत बीजों की मांग निरंतर बढ़ रही है क्योंकि ''जैसा बोओगे, वैसा काटोगे'' वाली कहावत किसानों की समझ में आ चुकी है। बीज खरीदते समय उत्तम बीज की गुणवत्ता सम्बन्धी निम्नलिखित विशेष बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- बीज की किस्म, उत्पादन क्षमता तथा बीज स्रोत की जानकारी अवश्य लें।
- फसलों की किस्मों व संकर बीजों की न्यूनतम जमाव क्षमता, भौतिक व अनुवांशिक शुद्धता को निर्धारित किया गया है तथा नाम पट्टी (लेबल) का आकार, रंग और उसके घटक निर्धारित प्रमाणित बीज अनुसार निर्धारित किये गए हैं।

प्रमाणित बीजों की नाम पट्टी (लेबल) का नीला रंग (भारत मानक नंबर 275) होता है।

लेबल के घटकों में निम्नलिखित जानकारी होनी चाहिए : 1. लेबल नंबर, 2. प्रकार (फसल), 3. किस्म, 4. ढेरी संख्या (लौट नंबर), 5. परीक्षण की दिनांक, महीना एवं वर्ष, 6. वैध्यता अवधि, 7. जमाव क्षमता (न्यूनतम), 8. भौतिक शुद्धता (न्यूनतम), 9. अनुवांशिक शुद्धता, 10. वज़न, 11. बीज उपचार के लिए प्रयुक्त रसायन (यदि बीज उपचारित हो), 12. बीज विक्रेता या उपलब्ध करवाने वाले का नाम व पता।

किसानों से अनुरोध है कि बीज खरीदते समय लेबल के घटकों की जांच पड़ताल अवश्य करें तथा लेबल पर लिखे परीक्षण का समय, जमाव क्षमता, भौतिक एवं अनुवांशिक शुद्धता और वैधता अवधि का विशेष ध्यान रखें। बीज खरीद की रसीद बीज विक्रेता से अवश्य लें तथा ध्यान रहे कि बीज पात्र (बोरी, कट्टा इत्यादि) पूरी तरह सील बंद हो।

किसानों को सलाह दी जाती है कि केवल प्रमाणित बीज ही खरीदें जिसके साथ टैग लगा हो। इस पर बीज की उत्तमता का प्रमाण होता है। प्रमाणित बीज पर टैग के अतिरिक्त नाम पट्टी (लेबल) भी होना आवश्यक है। अपने हक और न्याय के लिए निम्नलिखित दस्तावेज, पात्र व सामग्री सुरक्षित रखनी चाहिए जो कि समयानुसार आवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध कराया जा सके।

क. बीज खरीद रसीद ख. बीजपात्र ग. बीज का नमूना
घ. नामपात्र (लेबल, यदि प्रमाणित बीज हो तो टैग भी साथ हो)

बीज एक्ट, 1966 (संशोधन, 1974) के अनुसार यदि बीज की गुणवत्ता त्रुटिपूर्ण हो तो उपरोक्तलिखित दस्तावेजों, बीजपात्र एव बीज नमूना सहित अपनी रिपोर्ट सक्षम प्राधिकरण के सामने पेश कर सकते हैं। यदि उत्पादन के स्रोत व फसल की असफलता के कारण बीज की त्रुटिपूर्ण गुणवत्ता से सिद्ध होता है तो किसान मुआवज़े का हकदार होगा।

उत्तम व शुद्ध बीज के गुण : 1. अधिकतम बीज का जमाव, 2.अधिकतम अनुवांशिक व भौतिक शुद्धता, 3. न्यूनतम अवांछनीय किस्म व फसल के बीज, 4. न्यूनतम खरपतवार, 5. स्वस्थ रोगरहित व ठोस बीज

''अधिक उत्पादन के लिए प्रमाणित बीज ही खरीदें''

[1]विस्तार शिक्षा विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

बसन्तकालीन बुवाई हेतु गन्ने की उन्नतशील प्रजातियां

✍ **सुधीर शर्मा, रमेश कुमार एवं लोकेश यादव**
क्षेत्रीय अनुसन्धान केंद्र करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गन्ना हरियाणा प्रांत की नकदी फसलों में से एक मुख्य फसल है। इसके अंतर्गत प्रांत में लगभग एक लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल है। हरियाणा में गन्ने की बुवाई मुख्यत: बसन्त (फरवरी-मार्च) में की जाती है। अधिकांश कृषकों को यह जानकारी नहीं होती है कि इस समय गन्ने की कौन-कौन सी प्रजातियां बुवाई के लिए उपयुक्त हैं। जिस प्रजाति का गन्ना उन्हें सुगमता से मिल जाता है उसी को वे अपने खेत में बो देते हैं। फलस्वरूप न तो अच्छी पैदावार मिल पाती है और न ही चीनी का परता उचित मात्रा में मिल पाता है। गन्ना खेती में प्रजातियों का विशेष महत्व है इसलिए नवीनतम उन्नतशील प्रजातियों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी किसानों तक पहुंचाना आवश्यक है। इन उन्नतशील प्रजातियों को अपना कर किसान अच्छी गन्ना उपज व चीनी परता में आशातीत वृद्धि कर सकते हैं।

शीघ्र पकने वाली प्रजातियां

सी ओ एच 160 : यह एक अगेती पकने वाली व अधिक पैदावार वाली नवीनतम किस्म है।इसमें खाण्ड अंश 18 -20 प्रतिशत है। इसका गन्ना ठोस, वज़न में भारी तथा मध्यम मोटाई का है। इसकी मोढ़ी अच्छी तथा यह एक न गिरने वाली किस्म है। यह प्रजाति कीड़ों एवं बीमारियों की प्रतिरोधी है। इस किस्म से अच्छी पैदावार लेने के लिए समय पर जड़ बेधक कीड़ों की रोकथाम आवश्यक है। इसकी औसत पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ है।इस किस्म को 90 सैं.मी. खूड़ से खूड़ की दूरी पर ही लगाना चाहिए और इसमें 25 प्रतिशत ज़्यादा पोषक तत्वों की ज़रूरत पड़ती है ।

सी ओ एच 56 : यह एक अगेती पकने वाली व अधिक पैदावार वाली किस्म है। इसमें खाण्ड अंश 18.0 प्रतिशत है। इसका गन्ना मध्यम मोटाई का व पत्तियां चौड़ी व हल्के हरे रंग की होती हैं। यह न गिरने वाली व अच्छे फुटाव वाली किस्म है। यह घसेला रोग के लिए अति संवेदनशील है। अत: इसका बीज गर्म व तर हवा विधि द्वारा उपचारित कर के ही प्रयोग में लाना चाहिए। इसकी सिफारिश केवल प्रांत के पश्चिमी क्षेत्र के लिए की जाती है। यह लाल सड़न रोग के लिए संवेदनशील है। अत: इसे खड़े पानी की परिस्थितियों में न उगायें। इसकी औसत पैदावार 300 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सी ओ एच 92 : यह एक अगेती पकने वाली किस्म है। इसमें खांड अंश 18-20 प्रतिशत है। इसका जमाव अच्छा परन्तु फुटाव कम है।इस किस्म का गन्ना मोटा, ठोस तथा लम्बी बढ़वार वाला होता है।अच्छी पैदावार के लिए जड़ बेधक कीड़े की रोकथाम का समय पर प्रबंध आवश्यक है। इसकी औसत पैदावार 250 क्विंटल प्रति एकड़ है। इसकी बिजाई की सिफारिश पूरे हरियाणा प्रान्त के लिए की जाती है।

मध्यम पकने वाली प्रजातियां

सी ओ एच 99 : यह एक मध्यम पकने वाली किस्म है। इसमें खांड अंश लगभग17.5 प्रतिशत होता है। खड़े पानी, खराब पानी व खराब ज़मीन जैसी परिस्तिथियों में यह एक सर्वोत्तम किस्म है। गिरने के बाद भी पैदावार व चीनी पर प्रतिकूल असर नहीं पड़ता ।यह कीड़ों व बिमारियों के लिए संवेदनशील नहीं है। पूरे प्रान्त के लिए इसकी बिजाई की सिफारिश की गई है। इसकी औसत पैदावार 280 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सी ओ एच 119 : यह एक मध्यम पकने वाली किस्म है। इसका गन्ना ठोस, वज़न में भारी तथा मध्यम मोटाई का है। यह किस्म बसन्तकालीन बिजाई के लिए उपयुक्त है। इसकी मोढ़ी अच्छी तथा यह एक न गिरने वाली किस्म है। यह किस्म लाल सड़न रोधक है तथा इसको सारे प्रान्त के लिए अनुमोदित किया गया है। इसकी औसत पैदावार 320 क्विंटल प्रति एकड़ है। इस किस्म की अच्छी पैदावार लेने के लिए समय पर बिजाई तथा मंजूरशुदा (सिफारिश) किया गया बीज व खाद की मात्रा का ही प्रयोग करें।

सी ओ एच 128 : यह किस्म मध्यम पकने वाली है। इसकी औसत पैदावार 305 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह अच्छे फुटाव वाली किस्म है। यह किस्म गन्ने के लाल सड़न रोग की प्रतिरोधी है तथा इसमें कीड़ों का प्रकोप कम होता है। इसमें खाद की मात्रा अन्य मध्यम व पछेती किस्मों सी ओ एच 119, सी ओ 1148, सी ओ एस 767 व 7717 के बराबर डाली जाती है।

अन्य शीघ्र पकने वाली प्रजातियां

सी ओ 238 : यह एक अगेती पकने वाली किस्म है। इस किस्म को उत्तर पश्चिम क्षेत्र के लिए जारी किया है जो अधिक गन्ना एवं चीनी उपज के लिए प्रचलित है। यह किस्म सूखे एवं जलमग्नता क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह गन्ने की प्रमुख बीमारयां लाल सड़न व कंडुआ के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। चोटी बेधक का प्रबंधन इस किस्म के लिए आवश्यक है। इसकी औसत पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सी ओ 118 : इस अगेती किस्म को उत्तर पश्चिम क्षेत्र के लिए वर्ष 2009 में जारी किया गया था। यह एक अधिक गन्ना उपज एवं अधिक चीनी युक्त वाली किस्म है। इस किस्म का फुटाव कम रहता है। इस किस्म को कम नाइट्रोजन की आवश्यकता है। इस किस्म की औसत पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ है। ◆

(पृष्ठ 08 का शेष)

पहुंच जाते हैं। कोलन में, फाइबर किण्वित किया जाता है और कुछ बायोएक्टिव यौगिक, जिनमें एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि होती है, रिहा किये जाते हैं। केवल 0.5-5% फेरिलिक एसिड छोटी आंत के भीतर अवशोषित होता है, मुख्य रूप से, घुलनशील अंश और यह शुद्ध फेनोलिक एसिड शायद कैंसर से कोलन की सुरक्षा में एक बड़ी कार्रवाई करता है। इस प्रकार, बाध्य फेनोलिक एसिड पाचन तंत्र की पूरी लंबाई में, ऑक्सीडेटिव यौगिकों को हटाने का कार्य करता है।

निष्कर्ष और अनुसंधान

अनाज और अनाज उत्पाद, दुनिया भर के आहार का एक प्रमुख घटक हैं जो कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, फाइबर, विटामिन ई, विटामिन बी, सोडियम, सेलेनियम, मैग्नीशियम और ज़िंक के सेवन में, पर्याप्त योगदान देता है। अनाज के स्वास्थ्य लाभ, बायोएक्टिव यौगिकों की उपस्थिति के कारण हैं। अनाजों में जैव सक्रिय यौगिकों की पहचान और मात्रा, हमें इन स्वास्थ्य-वर्धक यौगिकों के बढ़े स्तर के साथ, अनाज चुनने में मदद करेगी। हालांकि, मनुष्यों में उनकी जैव उपलब्धता, चयापचय और स्वास्थ्य योगदान निर्धारित करने के लिए, अनुसंधान की आवश्यकता है। ◆

जीवाणु खाद: पोषक तत्वों का सस्ता स्रोत

✍ **कौटिल्य चौधरी, राकेश कुमार एवं एस. के. शर्मा**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फसलों के उत्पादन के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। सामान्यत:भूमि में इनकी आपूर्ति के लिए रासायनिक उर्वरकों व देसी खादों का उपयोग किया जाता है। जीवाणु खाद में लाभदायक जीवाणु पौधे को पोषक तत्व उपलब्ध करवाते हैं। जीवाणु खाद पोषक तत्वों का ऐसा स्रोत है जो सस्ता होने के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषक भी नहीं है। खाद में करोड़ों की संख्या में उपस्थित एक प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु वायु से नत्रजन को भूमि में ऐसी अवस्था में लाते हैं जिससे पौधा नत्रजन को आसानी से ग्रहण कर सकता है। दूसरी प्रकार के जीवाणु मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाकर फसलों को उपलब्ध करवाते हैं। जीवाणु खाद उत्पादन इकाई, सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार ने अलग-अलग फसलों में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए अलग-अलग जीवाणुओं की खोज की है।जीवाणु खाद 50 मिलीलीटर की बोतल में भरकर महज 10 रुपए में किसानों को दी जाती है। जीवाणु खाद किसानों के बीच टीका नाम से प्रचलित है। खेती में जीवाणु खाद का अधिक से अधिक प्रयोग करके उर्वरकों की खपत कम की जा सकती है और पर्यावरण को होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है। इनके प्रयोग से फसल उत्पादन की लागत में कमी की जा सकती है एवं फास्फोरस उर्वरकों की उपयोग क्षमता भी बढ़ाई जा सकती है।

राईजोबियम का टीका (राईजोटीका) : इस टीके में राइजोबियम नामक बैक्टीरिया पाए जाते हैं। यह एक विशेष प्रकार के जीवाणु हैं जो फलीदार पौधों की जड़ों पर गुलाबी रंग की गांठें बनाकर उनमें रहते हैं और वायुमंडल में से नत्रजन लेकर पौधे को उपलब्ध करवाते हैं। ये जीवाणु न केवल फलीदार पौधों की नत्रजन की आवश्यकता पूरी करते हैं बल्कि आगे बोई जाने वाली फसलों को भी नत्रजन की उपलब्धता करवाते हैं। राइजोबियम की विभिन्न प्रजातियां हैं। अलग-अलग फसलों के लिए अलग-अलग प्रजातियां प्रयोग की जाती हैं। राइजोबियम के टीके द्वारा उपचारित फसलों की सूची नीचे दी गई है :

- मूंग, लोबिया, अरहर, उड़द, मटर, चना, मूंगफली, सोयाबीन, बरसीम, रिजका, मसर, ग्वार, ढैंचा
- सामान्यत: मिट्टी में राइजोबियम जीवाणु कम मात्रा में पाऐ जाते हैं इसलिए इसका प्रयोग प्रतिवर्ष करना चाहिए। यदि हम इस टीके का प्रयोग दलहनी फसलों में करें तो हम उन्हें बिना किसी रासायनिक उर्वरक की सहायता से कम उपजाऊ भूमि में भी उगा सकते हैं।

एजोटोबेक्टर का टीका (ऐजोटीका) : इस टीके में एजोटोबेक्टर नामक बैक्टीरिया पाऐ जाते हैं। यह जीवाणु भूमि में स्वतंत्र रूप से रहकर वायुमंडल से नत्रजन को लेकर भूमि में छोड़ देते हैं जोकि पौधों के लिए उपलब्ध हो जाती है। यह टीका पौधों को फफूंदी से होने वाले रोगों से बचाता है व पौधे को स्वस्थ रखने के साथ-साथ मज़बूत बनाकर पैदावार में भी वृद्धि करता है। इस टीके से उपचारित फसलों की सूची नीचे दी गई है :

- गेहूं, जौ, ज्वार, जई, धान, मक्का, बाजरा, कपास, तंबाकू, गन्ना, जूट, सरसों, तिल, सूरजमुखी, आलू, बैंगन, टमाटर, प्याज़

फास्फोटीका : इस टीके में फास्फोरस विलेयक बैक्टीरिया पाए जाते हैं। पौधे की जड़ों के विकास, दाना बनाने की प्रक्रिया व मोटा दाना बनाने के लिए फास्फोरस की आवश्यकता होती है। पौधे को फास्फोरस उपलब्ध करवाने के लिए ज़मीन में डी.ए.पी. या सिंगल सुपर फास्फेट उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है जिनका बहुत बड़ा हिस्सा ज़मीन में अघुलनशील अवस्था में चला जाता है जिसे पौधे अवशोषित नहीं कर सकते। इसके अलावा फास्फोरस ज़मीन में काफी मात्रा में अघुलनशील अवस्था में पहले से ही पड़ा रहता है। इस टीके के जीवाणु फास्फोरस को अघुलनशील से घुलनशील बना देते हैं जिसको पौधे अवशोषित कर सकते हैं। इस टीके का इस्तेमाल सभी फसलों में कर सकते हैं।

बायोटीका : कपास, गेहूं व जौ में सूत्रकृमि की रोकथाम के लिए इस टीके का प्रयोग किया जाता है। कपास में सूत्र कृमियों के द्वारा 'जड़ गाठन रोग' होता है जिसकी रोकथाम ग्लूकॉनएसीटोबेक्टर नामक जीवाणु (बायोटीका) से की जा सकती है। गेहूं व जौ में सूत्रकृमियों द्वारा 'मोल्या रोग' होता है इसकी रोकथाम एजोटोबेक्टर एच टी- 54 (बायोटीका) के इस्तेमाल से की जा सकती है।

जीवाणु खाद के फायदे :

- इन खादों का प्रयोग करने से फसलों को ज़रूरत के कई पोषक तत्व भूमि में उपलब्ध हो जाते हैं जिससे उत्पादन व उत्पादकता बढ़ती है।
- ये जीवाणु मिट्टी में रोग पैदा करने वाले फफूंद को नष्ट कर लाभकारी जीवाणुओं की संख्या बढ़ाते हैं।
- ये जीवाणु खेत में पड़े फसल अवशेषों को गला सड़ाकर भूमि में कार्बनिक पदार्थ की उचित मात्रा बनाए रखते हैं।
- इनके प्रयोग से खाद्यान्नों की गुणवत्ता बढ़ती है।
- ये जीवाणु रासायनिक उर्वरकों की लागत को कम करके किसानों की आमदनी बढ़ाते हैं व ये बाज़ार में काफी कम मूल्य पर उपलब्ध होते हैं।
- ये जीवाणु 5 से 8 प्रतिशत तक फसल की पैदावार में बढ़ोत्तरी करते हैं तथा यूरिया एवं सिंगल सुपर फास्फेट जैसी रासायनिक खादों की 15 से 25 प्रतिशत तक बचत करते हैं।

टीका उपचार करने की विधि : सभी टीकों से उपचार करने की विधि एक जैसी है। सामान्य तौर पर बीज उपचार के लिए 50 मिलीलीटर का एक टीका 1 एकड़ भूमि के लिए काफी है लेकिन जिस फसल में प्रति एकड़ 10 किलोग्राम से ज़्यादा बीज की ज़रूरत हो वहां प्रति 10 किलोग्राम बीज पर एक टीका (50 मि.ली.) इस्तेमाल करें। उदाहरण के लिए बाजरा, सरसों जिसमें 1 से 2 किलोग्राम प्रति एकड़ बीज की आवश्यकता होती है यहां एक ऐजोटीका (50 मि.ली.) व एक फास्फोटीका (50 मि. ली.) 1 एकड़ के लिए पर्याप्त है। गेहूं व धान के लिए 4 ऐजोटीका (200 मिलीलीटर) एवं 4 फास्फोटिका (200 मिलीलीटर) बीज उपचार के लिए चाहिए। गन्ने जैसी फसलों के लिए 20 ऐजोटीका (1 लीटर) एवं 20 फास्फोटिका (1 लीटर) चाहिए।

बीज का उपचार : बीज उपचार के लिए 50 ग्राम गुड़ को 250 मिलीलीटर पानी में घोल कर गर्म करें व इसे ठंडा होने दें। बीज को किसी फर्श या पॉलीथिन शीट पर फैलाएं और इस घोल के साथ मिलाएं ताकि बीज चिपचिपे हो जाएं। अब टीके की बोतल खोल कर बीजों पर छिड़क दें और इसे हाथों से अच्छी तरह से मिला लें। अब उपचारित बीज को छाया में 15-20 मिनट सुखा कर बो दें।

(शेष पृष्ठ 12 पर)

खेजड़ी का घटता हुआ क्षेत्र : एक खतरा

✍ विरेन्द्र दलाल, आर. एस. ढिल्लों एवं के. एस. अहलावत
वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खेजड़ी जिसे हम जांड, जांटी और सांगरी भी कहते हैं, दक्षिण हरियाणा व इससे लगते पड़ोसी राज्य राजस्थान का एक महत्त्व पूर्ण पेड़ है। यह वृक्ष जेठ के महीने में भी हरा रहता है और गर्मी में जब रेगिस्तान में जानवरों के लिए धूप से बचने का कोई सहारा नहीं होता तब यह पेड़ छाया देता है। जब खाने को कुछ नहीं होता है तब यह चारा देता है जो लूंग कहलाता है। इसकी पत्तियों में 12 से 18 प्रतिशत प्रोटीन होता है, 13 से 20 प्रतिशत रेशा, 44 से 59 प्रतिशत नाईट्रोजन रहित पदार्थ, 0.28 से 0.9 प्रतिशत फॉस्फोरस और 1.5 से 2.7 प्रतिशत कैल्शियम पाया जाता है। इसका फूल मींझर व फल सांगरी कहलाता है जिसकी सब्जी बनाई जाती है। यह फल सूखने पर खोखा कहलाता है जो सूखा मेवा है। इसकी लकड़ी और शाखाएं काटने के बाद ईंधन के रूप में प्रयोग की जाती हैं। इसकी लकड़ी में 5000 के.सी.एल./के.जी.के. (भारी मात्रा में केलोरिफिक) गुण होता है और इसकी लकड़ी कोयला बनाने के काम में लाई जाती है। इसकी छाल को अस्थमा, बवासीर, ल्यूकोमा और बिच्छु काटने पर घरेलू दवाई के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह वृक्ष बालू के टीलों को फैलने से भी रोकता है।इसलिए इसे 'राजस्थान की संजीवनी' भी कहते हैं।

इस पेड़ का अपना एक इतिहास है। वर्ष 1730 में जोधपुर के राजा अभय सिंह ने अपने नए महल के निर्माण का आदेश दिया, जिसमें महल को बनाने के लिए चूना बनाने हेतु लकड़ी की आवश्यकता हुई जिसके लिए खेजड़ी के वृक्षों को कटवाने का आदेश दिया गया। इस आदेश का वहां के आसपास के रहने वाले लोगों ने विरोध किया क्योंकि वे लोग अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदग़ी के लिए इस पेड़ पर निर्भर थे। इसके अलावा इस पेड़ को लोगों ने अपने धर्म के साथ भी जोड़ रखा था। इसलिए वहां के लोगों और राजा के आदेश में टकराव की वजह से 363 बिश्नोइयों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। जब राजा को इस बात का पता चला तो उन्होंने अपना आदेश वापस ले लिया।

इस वृक्ष में फरवरी-मार्च माह के दौरान फूल आते हैं और अप्रैल-मई माह में इस वृक्ष पर फलियां लगती हैं, जड़ें गहरी तथा नाईट्रोजन संग्रहण करने की क्षमता रखती हैं। इस पेड़ की जड़ें ज़मीन को कार्बनिक पदार्थों से भरपूर रखती हैं, जिसके कारण इस वृक्ष के साथ सभी फसलों की पैदावार अधिक होती है। शुष्क क्षेत्रों में वनस्पतियां कम होने की वजह से खेजड़ी की छंगाई पूर्ण रूप से प्रति वर्ष की जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप खेजड़ी के बीज का उत्पादन न के बराबर होता है और खेजड़ी के पौधों की संख्या में भारी गिरावट आई है। यही हाल रहा तो वो दिन दूर नहीं जब खेजड़ी वृक्ष पूरी तरह से विलुप्त हो जाएगा। इसलिए हमें खेजड़ी की छंगाई का उचित प्रबंधन करना चाहिए। किसानों को अपने खेत में लगे खेजड़ी के पेड़ों को तीन समान भागों में बांट लेना चाहिए। भाग-एक के वृक्षों की छंगाई पहले वर्ष करें, भाग-दो के वृक्षों की छंगाई दूसरे वर्ष करें तथा भाग-तीन के वृक्षों की छंगाई तीसरे वर्ष करें। इस तरह से छंगाई करने से हर वृक्ष की छंगाई तीन साल बाद होगी और चारे व ईंधन की पैदावार 40 प्रतिशत तक बढ़ जाती है तथा जिन दो वर्षों के दौरान छंगाई नहीं की जाती, उन वर्षों में बीज का उत्पादन बहुत अच्छा होता है। छंगाई के लिए नवम्बर का महीना सबसे अच्छा रहता है। छंगाई तीन साल बाद करने से तने की बढ़वार भी दो गुना अधिक होती है।

नर्सरी : इस के बीजों को अनुकूल तापमान पर 24 से 48 घण्टे तक पानी में डुबोए रखने से अंकुरण क्षमता बढ़ जाती है। 22.5 x 12.5 सैं.मी. आकार के पॉलीथिन बैग में एक हिस्सा पौधशाला की मिट्टी, एक हिस्सा गली-सड़ी खाद से भरा जाता है और फरवरी-मार्च में इन पॉलीथिन बैग में बीज बोया जाता है। पौधशाला में पॉलीथिन थैली को दो या तीन बार बदल दिया जाता है, ताकि जड़ें थैली के नीचे से मिट्टी में न जा सकें।

पौधारोपण : जब पौधा 45 सैं.मी. का हो जाए इसे 45 x 45 x 45 सैं.मी. के गड्ढे में 5 x 5 मी. की दूरी पर लगाएं और इसमें फसलें आसानी से उगाई जा सकती हैं। वृक्षारोपण के 5 से 7 वर्षों के बाद प्रत्येक पंक्ति से एक पौधे को छोड़ कर दूसरे पौधे को हटा दिया जाता है। इस प्रकार पौधा-दर-पौधा और पंक्ति-दर-पंक्ति दूरी 10 x 10 मी. हो जाती है, जिस से पौधों की बढ़वार प्रभावित नहीं होती।

पौधों की देखभाल :

- रोपाई के प्रथम वर्ष के दौरान बरसात का मौसम आने से पहले खेजड़ी के पौधों को तीन-से-चार बार पानी देना चाहिए। दो-तीन वर्ष के बाद नीचे की शाखाओं को काटने व छांटने से पौधा सीधा बढ़ता है।
- गैनोडर्मा फफूंद की छतरी वृक्ष पर जहां भी दिखे, उसे वहां से हटा कर तुरन्त नष्ट कर दें।
- ट्रैक्टरों के बढ़ते चलन के कारण खेतों में नए वृक्ष न के बराबर उग पा रहे हैं। इसलिए ट्रैक्टर से जुताई के समय प्राकृतिक रूप से उगे हुए पौधों को बचाकर रखें। प्राकृतिक रूप से उगने वाला पौधा हमेशा उस क्षेत्र विशेष के अनुसार ही जन्म लेता है जिस के जीवित और बढ़ने के आसार कृत्रिम रूप से लगाए गए पौधे से अधिक होते हैं।
- खेजड़ी की छंगाई करते समय उस पर 3 या 4 स्वस्थ शाखाएं हमेशा छोड़ें ताकि प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया बाधित न हो। इसके अतिरिक्त बीज उत्पादन के लिए 3-4 स्वस्थ शाखाओं का छोड़ना अत्यन्त आवश्यक है।
- वर्षा ऋतु के समय वृक्ष के चारों ओर 4 मी. x 50 सैं.मी. x 50 सैं.मी. खाई बनाकर वर्षा जल को संरक्षित करें ताकि लम्बे समय तक वृक्ष की जल-आपूर्ति सुनिश्चित हो सके।
- जहां खेजड़ी वृक्ष सूखने का प्रकोप हो, वहां वर्षा ऋतु में वृक्षों की जड़ों में क्लोरपाईरिफॉस 20 ई.सी. 15 मिली लीटर, कार्बेन्डाज़िम 50 डब्ल्यू.पी. 20 ग्राम, कॉपरऑक्सीक्लोराइड 50 डब्ल्यू.पी. 40 ग्राम प्रति वृक्ष चारों ओर पानी के साथ डालें। ◆

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

उर्वरक प्रयोग की सही विधि

✍ **देवेंद्र सिंह जाखड़, देवराज एवं सुनील बैनीवाल**
कृषि विज्ञान केंद्र, सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सघन खेती तथा बौनी किस्मों के प्रचलन के कारण अधिक पैदावार के लिए रासायनिक खादों (उर्वरकों) पर निर्भरता बढ़ी है। उर्वरक प्रयोग क्षमता बढ़ाने के लिए सही उर्वरकों का चुनाव, डालने की सही विधि तथा फसल की किस अवस्था में इन को डाला जाए, बहुत महत्वपूर्ण है। उर्वरक डालने से पहले मिट्टी का प्रकार, मिट्टी में तत्व विशेष की उपलब्धता, सिंचाई के पानी की गुणवत्ता आदि का पता होना चाहिए। यह भी पता होना अत्यावश्यक है कि उर्वरक सतह पर डाले जाएं या इनको जड़ के पास दिया जाए। दिन के किस समय उर्वरक को देना ठीक रहता है यह भी जानना ज़रूरी है। इन सभी बातों को ध्यान में रखकर उर्वरक प्रयोग क्षमता बढ़ाई जा सकती है। जो उर्वरक मुख्य पोषक तत्व जैसे कि नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश आदि देते हैं उनको अधिक मात्रा में देना पड़ता है परंतु जो सूक्ष्म तत्व देते हैं उनका पर्णीय छिड़काव करना ही पर्याप्त रहता है। प्रमुख उर्वरकों की प्रयोग की विधि तथा सही समय निम्न है :

नत्रजनधारी उर्वरक : ये उर्वरक जल में घुलनशील होते हैं तथा अत्यधिक गतिशील होते हैं। ये एक बार डालने के बाद पौधों की जड़ों के पास आसानी से पहुंच जाते हैं। अत: इन उर्वरकों का सतह पर छिड़काव किया जाना ठीक रहता है। अत: इनको छिड़काव, ड्रिलिंग या संस्थापन विधि से खेत में डाला जा सकता है। यह उर्वरक लीचिंग से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं इसलिए इसे पौधों की वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में प्रयोग किया जाना चाहिए। भारी ओर चिकनी मृदा में इनकी गतिशीलता कम होती है इसकी तुलना में हल्की मृदा में ये पानी के साथ शीघ्रता से नीचे चले जाते हैं अत: ऐसी मृदा में इनको सिंचाई के बाद डालना चाहिए।

उर्वरक	नत्रजन (%)
यूरिया	46
कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	25
अमोनियम सल्फेट	20
अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	26
कैल्शियम नाइट्रेट	15.5
सोडियम नाइट्रेट	16
अमोनिया	20-25
अमोनियम फॉस्फेट	20

फास्फोरस उर्वरक : फॉस्फोरस का संचालन प्रयोग किये जाने वाले स्थान से बहुत धीरे-धीरे होता है। अत: इसका प्रयोग पौधों की जड़ों के पास करना अत्यंत आवश्यक है जहां से पौधे इसे आसानी से ग्रहण कर सकें। इस तत्व का मृदा में स्थिरीकरण हो जाता है तथा जड़ों को इन के पास पहुंच कर लेना पड़ता है। अगर इनको सतह पर दे दिया जाए तो ये जड़ों से दूर हो जाते हैं तथा फास्फोरस उतना ही कम प्राप्त होता है। इनमें से कुछ उर्वरकों के साथ नाइट्रोजन भी प्राप्त होता है इसलिए नाइट्रोजन देते समय इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए। क्षारीय (पी एच मान >8.2) भूमि में केवल 80 प्रतिशत से ज़्यादा पानी में घुलनशील फास्फोरस के उर्वरक ही डालने चाहिएं। अम्लीय भूमि में पानी में अघुलनशील फास्फोरस के उर्वरकों को बिखेर कर प्रयोग करना लाभकारी रहता है। इस प्रकार की मृदा में सीट्रिक एसिड में घुलनशील उर्वरकों का प्रयोग करना लाभकारी रहता है।

उर्वरक	पी$_2$ओ$_5$ (प्रतिशत)	नाइट्रोजन (प्रतिशत)
सिंगल सुपर फॉस्फेट	16	-
ट्रिपल सुपर फॉस्फेट	46	-
डाइ अमोनियम फोसफेट	46	18
मोनो अमोनियम फॉस्फेट	20	16
यूरिया अमोनियम फॉस्फेट	28	28

पोटाश उर्वरक: पोटाशधारी उर्वरक मृदा में कम गतिशील होते हैं और मृदा में इनका स्थिरीकरण भी हो जाता है, इसलिए पोटाश उर्वरकों को जड़ क्षेत्र के समीप ही प्रयोग करना चाहिए। पोटाश का सबसे सस्ता उर्वरक म्यूरेट ऑफ पोटाश है। पर इसमें ध्यान देने योग्य यह है कि क्षारीय मृदा में म्यूरेट ऑफ पोटाश न डालें। इस मृदा में पोटाशियम सल्फेट का प्रयोग करना उपयुक्त रहता है । फसल विशेष में जैसे कि तंबाकू, आलू, टमाटर तथा अंगुर में म्यूरेट ऑफ पोटाश हानिकारक हो सकता है इसलिए इन फसलों में पोटाशियम सल्फेट का प्रयोग फायदेमंद रहता है ।

उर्वरक	पी$_2$ओ$_5$ (प्रतिशत)
म्यूरेट ऑफ पोटाश	16
पोटाशियम सल्फेट	50

(पृष्ठ 10 का शेष)

* एक ऐजोटीका (50 मि.ली.) व एक फास्फोटीका (50 मि.ली.) के लिए 50 ग्राम गुड़ को 250 मिलीलीटर पानी में घोल बनाने की आवश्यकता होती है। टीकों की मात्रा के अनुसार हमें घोल की मात्रा बढ़ानी चाहिए।

पौध का उपचार : पौध उपचार के लिए पौधे की जड़ों को रोपाई से पहले जीवाणु खाद के घोल में लगभग आधा घंटा डुबोकर उपचारित किया जाता है व इसकी बाद में पौध की भूमि में रोपाई की जाती है।

जीवाणु खाद के उपयोग में सावधानियां:

- ❑ जीवाणु खाद के टीके या बोतल पर जिस फसल का नाम लिखा हो उसके लिए ही इसका प्रयोग करना चाहिए।
- ❑ जीवाणु खाद को बोतल पर लिखी अंतिम तिथि से पूर्व प्रयोग करें।
- ❑ जीवाणु खाद को गुड़ के गरम घोल में नहीं मिलाना चाहिए क्योंकि इससे जीवाणु मर जाएंगे।
- ❑ जीवाणु खाद के टीके या बोतल को हमेशा छाया में रखें व बीज उपचार करते समय ही बोतल को खोलें।
- ❑ जीवाणु खाद के उपचार के बाद बीज छाया में ही सुखाएं।
- ❑ जीवाणु खाद को रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के साथ नहीं मिलाना चाहिए।
- ❑ यदि फफूंदीनाशक, कीटनाशक दवाइयों से बीज को उपचारित करना हो तो बिजाई से 12 से 24 घंटे पहले कर लें और इनसे उपचार के बाद बीज को जीवाणु खाद से बिजाई करने के समय उपचारित करें।

अत: हम कह सकते हैं जैविक खाद फसलों की अच्छी पैदावार के लिए ज़रूरी पोषक तत्व प्रदान करने का सरल व सस्ता स्रोत है। जैविक खाद कृषि विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा काफी कम कीमत पर उपलब्ध कराए जाते हैं। ◆

मई मास के कृषि कार्य

फसलों में

धान

भारी व स्वस्थ बीज के चुनाव के लिए 10 किलोग्राम बीज को 10 लीटर नमक के घोल (10 लीटर पानी में एक किलोग्राम नमक) में डुबोएं और हाथ से धीरे-धीरे चलाएं। हल्के रोगग्रस्त बीज तथा आभासी कंडुआ के पिण्ड ऊपर तैरने लगते हैं जिन्हें निकाल कर नष्ट कर दें और नीचे बैठे हुए भारी बीज को स्वच्छ पानी से 3-4 बार अच्छी तरह धो लें तथा तदुपरांत फफूंदनाशक दवा के घोल से उपचारित करें। बीजजनित रोगों से बचाव के लिए 10 लीटर फफूंदनाशक घोल (10 ग्राम कार्बेन्डाज़िम, एक ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन व 10 लीटर पानी) में 10 किलोग्राम धान को 24 घंटे भिगोकर उपचारित करके ही बिजाई करें। धान की नर्सरी उगाने के लिए 10-12 गाड़ी गोबर की खाद, 22 कि.ग्रा. यूरिया, 65 कि.ग्रा. एस. एस. पी. तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालें। फिर 2 सप्ताह बाद 22 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ नर्सरी में डालें।

धान की नर्सरी में खरपतवार नियन्त्रण के लिए बिजाई के 1-3 दिन बाद 600 ग्राम सोफिट (प्रेटिलाक्लोर 30 ई.सी.+सेफनर) प्रति एकड़ को 60 किग्रा. सूखी रेत में मिलाकर प्रयोग करें या 1.2 लीटर ब्यूटाक्लोर ई.सी. (मचैटी/डेलक्लोर/हिल्टाक्लोर) या थायोबेनकार्ब (सैटर्न ई.सी.) या पेन्डीमैथलीन (स्टॉम्प 30 ई.सी.) को 60 कि.ग्रा. सूखी रेत में मिलाकर अंकुरित धान के बोने के 6 दिन बाद एक एकड़ नर्सरी में डालें अथवा नर्सरी में मिले-जुले खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए 100 मि.ली. बिस्पाइरी बैक सोडियम (नोमिनी गोल्ड) 10 एस.एल. को 200 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई के 15 दिन बाद प्रति एकड़ छिड़काव करें।

कम अवधि वाली बौनी किस्में : आई आर 64, एच के आर 46, एच के आर 47 व गोबिन्द की नर्सरी 15 मई से 30 जून तक लगाएं।

लेखक :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा) एवं पादप रोग विज्ञान
- अश्विनी कुमार, परामर्शदाता (बागवानी)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- डी. एस. दूहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- तरुण वर्मा, सहायक वैज्ञानिक (कीट विज्ञान)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सह-प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मध्यम अवधि वाली किस्में : जया, पी आर 106, एच के आर 120, एच के आर 126, एच के आर 127 एवं हरियाणा संकर धान-1 की नर्सरी 15 मई से 30 मई तक लगाएं।

गेहूं

खुली कांगियारी के निवारण के लिए गेहूं के बीज को सौर ताप से उपचारित करें। मई-जून के महीने में जिस दिन मौसम साफ व खुला हो उस दिन 8 बजे प्रातः बीज को पानी में भिगो दें; ऊपर तैरते हुए पदार्थों को निकाल कर नष्ट कर दें और 4 घण्टे तक भीगने के बाद नीचे बैठे गेहूं के बीज को दोपहर 12 बजे निकाल लें और किसी पक्के फर्श या तिरपाल आदि पर फैलाकर शाम तक सुखाएं।

कपास

बिजाई इस माह के अंत तक पूरी कर लें। नरमा की उन्नत किस्में तथा देसी कपास की सिफारिशशुदा किस्में ही बोएं।

कपास से बढिया फुटाव के लिए पूरे खेत की तैयारी सही ढंग से करनी ज़रूरी है। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार 3-4 जुताइयां करें। बिजाई के समय खेत में तर बत्तर (गीली आल) का होना ज़रूरी है। इसके लिए खेत में अच्छा पलेवा करें। गीले बत्तर में दो जुताइयां करके सुहागा लगाएं व खेत को एकसार कर लें। खेत में पौधों की सही संख्या के लिए बीज की सही मात्रा प्रयोग में लाएं व बीज का उपचार करके ही बिजाई करें। नरमे का रोयें रहित 6-8 किलोग्राम व रोएं-युक्त 8-10 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। देसी कपास में 5 कि.ग्रा. बीज काफी रहता है। संकर किस्मों का रोएं उतरा बीज 1.2 से 1.5 कि.ग्रा. प्रति एकड़ प्रयोग करें। बी.टी. संकर किस्मों का 850 ग्राम बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। बीज को 4 से 5 सैं.मी. गहरा बोएं। नरमा की मुख्य किस्में एच एस 6, एच 1117 व एच 1226, एच 1098 संशोधित, एच 1236, एच 1300; नरमा की संकर किस्में एच एच एच 223, एच एच एच 287; देसी कपास की एच डी 107, एच डी 123, एच डी 324 व एच डी 432 तथा संकर नरमा में देसी की ए ए एच 1 प्रमुख हैं। बी.टी व संकर किस्मों को 67.5-60 सैं.मी. के फासले पर बीजें या कतार से कतार की दूरी 100 सैं.मी. व पौधे से पौधे की दूरी 45 सैं.मी. रखें व अन्य किस्मों में कतार से कतार की दूरी 67.5 सैं.मी. व पौधे से पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें।

बीजने के लिए यदि रोएं उतारे हुए बीज न मिलें तो रोएंदार (साधारण) बीज को बोने से पहले बारीक मिट्टी, गोबर या राख से रगड़ लेना चाहिए ताकि ड्रिल में से बीज एकसार निकलें। बिजाई कपास बीजने वाली एक खूड वाली ड्रिल से कतारों में करें।

अमेरिकन कपास की बिजाई करते समय हिसार तथा सिरसा जिलों में, जहां ज़मीन काफी रेतीली है, 37 किलोग्राम यूरिया तथा 75 किलोग्राम सुपरफास्फेट और 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। यूरिया की शेष आधी मात्रा (37 कि.ग्रा.) बौकी आने पर डालें। यदि ज़मीन भारी है और कपास गेहूं के बाद ले रहे हैं तो भी खाद बिजाई के समय डालें। यदि कपास बोने से पहले ज़मीन खाली थी और

ज़मीन भारी किस्म की है तो सिर्फ फास्फोरस और ज़िंक की मात्रा ही बिजाई से पहले डालें। सुपर फास्फेट हमेशा ड्रिल द्वारा डालनी चाहिए।

कपास की देसी किस्मों के लिए फास्फोरस की मात्रा की सिफारिश तभी की जाती है जब मिट्टी परीक्षण में फास्फोरस की कमी हो। यदि देसी कपास रेतीली व कमज़ोर भूमि में बो रहे हैं तो बिजाई के समय 45 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ अवश्य डालें। 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालें।

संकर कपास में नत्रजन और फास्फोरस की दुगुनी मात्रा डालें तथा पोटाश भी 40 किलोग्राम प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें।

मृदाजनित एवं बीजजनित रोगों से बचाव के लिए बीज का उपचार करके ही बिजाई करें। इसके लिए 10 लीटर फफूंदनाशक दवा के घोल (10 लीटर पानी में एक ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन व 1 ग्राम सक्सीनिक तेज़ाब) में 5 किलोग्राम रोएंदार बीज या 7½ कि.ग्रा. रोएं उतारे हुए (डिलिंटेड) बीज को भिगोएं। रोएं वाले बीज को 6-8 घंटे तक तथा रोएं उतारे गए बीज को केवल 2 घंटे तक ही भिगोएं। जिन क्षेत्रों में पिछले वर्षों में जड़ गलन की गंभीर समस्या देखी गई हो उन खेतों में कपास की बिजाई न करके ज्वार या बाजरे की खेती करें या 2.5 ग्राम बाविस्टिन प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार अवश्य करें। नरमा कपास का पत्ती मरोड़ रोग जहां पर पिछले साल देखा गया हो वहां देसी कपास या नरमा की प्रतिरोधी किस्म एच 1117, एच एच एच 223 की ही काश्त करें।

जिन खेतों में पिछले वर्षों में दीमक का प्रकोप देखा गया हो वहां बिजाई से पहले प्रति किलोग्राम बीज को 10 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. व 10 मि.ली. पानी के घोल से उपचारित करें। बीज को भिगोने के बाद ही इसे कीटनाशक के घोल से उपचारित करें। खरपतवार नियन्त्रण हेतु ट्रैफलोन (ट्राईफ्लूरालिन) की 0.8 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से या बासालीन की 0.8 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 200-250 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई से पहले छिड़काव करें व मृदा में मिलाएं अथवा कपास की बिजाई के तुरन्त बाद पेन्डीमैथलीन (स्टोम्प 30 ई.सी.) की 2 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 200-250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। इन खरपतवारनाशकों के प्रयोग के समय मृदा में उचित नमी का होना ज़रूरी है। मीलीबग के नियंत्रण के लिए बंजर भूमि पर व खेतों के आस-पास, मेढ़ों, खालों व रास्तों आदि पर उगने वाले खरपतवारों जैसे गाजर (कांग्रेस) घास, कांगी बूटी तथा कपास की पिछली फसल के ठूंठों से उगने वाले पौधों को नष्ट करें। कपास की छंट्टियों के ढेरों के नीचे गिरे टिण्डों, पत्तों आदि को जला दें।

गन्ना

गर्मियों में 10 दिन के अंतर पर सिंचाई करें। मोढ़ी में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए ऐट्राजीन 50% घु. पा. 1.6 कि.ग्रा. प्रति एकड़ का छिड़काव 250-300 लीटर पानी में घोलकर करें। इसके बाद चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए 2,4-डी (सोडियम साल्ट) 1.0 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। पहला छिड़काव बिजाई के 3 सप्ताह बाद करें, गन्ने की बीजू या नौलफ फसल में इस माह के अंत तक नाइट्रोजन वाली खाद की दूसरी मात्रा (45 किलोग्राम यूरिया) प्रति एकड़ खेत से घास-फूस निकालकर छिट्टे द्वारा डालें व ऊपर से हल्की सिंचाई करें। मोढ़ी फसल में उपर्युक्त खादों की डेढ़ गुनी मात्रा का प्रयोग करें।

मोढ़ी फसल में दीमक और कनसुआ की रोकथाम के लिए 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ सिंचाई के साथ लगाएं।

अगर गन्ने में पाइरिल्ला (अल) का आक्रमण हो व इसे मारने वाले परजीवी न हों तो 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

कभी-कभी काली बग (काली कीड़ी) के आक्रमण के कारण भी फसल पीली पड़ जाती है। अतः इस कीट के नियंत्रण के लिए 160 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. या 400 मि.ली. फेनिट्रोथियान 50 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। छिड़काव गोभ पर करें ताकि दिन के समय बच्चे तथा प्रौढ़ नष्ट हो जाएं। कभी-कभी अष्टपदी (माइट) का आक्रमण होने से पत्तों पर लाल रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इसके लिए 600 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. या 500 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

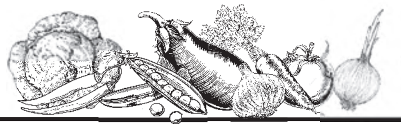

सब्जियों में

टमाटर

नाइट्रोजन वाली खाद खड़ी फसल में दो बार दें-पहली पौधरोपण के लगभग 3 सप्ताह बाद व दोबारा पहली मात्रा के एक महीने बाद। हर बार 12.5 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (27 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ की दर से दें। खाद देने के बाद सिंचाई करना न भूलें। सामान्यतः गर्मी के दिनों में 6 से 7 दिनों के अंतर पर सिंचाई करने की आवश्यकता होती है। रस चूसने वाले कीटों को मारने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। इस छिड़काव से टमाटर के वायरस रोगों की रोकथाम भी हो जाएगी। फल छेदक के लिए 500 ग्राम कार्बेरिल 50 घु.पा. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बैंगन

गर्मी के महीनों में सिंचाई का ध्यान रखें तथा खरपतवार निकालें। फलों को कच्ची व नरम अवस्था में तोड़ें तथा तोड़ते समय यह उचित होगा कि किसी तेज़ चाकू या ऐसे अन्य औज़ार को प्रयोग में लाएं जिससे कि टहनियां न टूटें। खड़ी फसल में 2 बार में 28 किलोग्राम नाइट्रोजन (14+14) प्रति एकड़ की दर से दें। पहली मात्रा रोपाई के 30 दिन बाद और दूसरी मात्रा 60 दिन बाद लगाएं।

मिर्च

प्लानोफिक्स या पौध वर्धक रसायन 40 मि.ली. दवा को 150 लीटर पानी में मिलाकर फूल आने के समय छिड़काव करें। इस दवा के प्रयोग से फल-फूल गिरने की समस्या काफी हद तक रुक जाती है। थ्रिप्स, अल और सफेद मक्खी से रक्षा करने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई. सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें। छिड़काव 15-20 दिन के बाद दोहराएं। इस छिड़काव से मिर्च के वायरस रोगों की भी रोकथाम हो जाएगी।

मूली

मूली की गर्मी की फसल के लिए सिर्फ पूसा चेतकी किस्म को ही प्रयोग में लाएं।

भिण्डी

कीटों (हरा तेला और चित्तीदार सूण्डी) से बचाव के लिए 300-500

मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। दवाई छिड़कने के बाद 8-10 दिन तक फल खाने के प्रयोग में न लें।

तरबूज व खरबूजा

चेपा, हरा तेला, माईट का प्रकोप होने पर 250 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। आवश्यकता पडने पर फिर दोहराएं। यदि फलों में मक्खी का आक्रमण हो गया हो तो खराब फलों को तोड़कर नष्ट कर दें तथा 250 मि.ली. फैनिट्रोथियान 50 ई.सी. या 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 500 ग्राम कार्बेरिल 50 घु.पा. को 1.25 किलोग्राम गुड़ और 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। सफेद चूर्णी नामक रोग होने पर 500 ग्राम घुलनशील गंधक (सल्फैक्स) को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। यदि खाद की दूसरी मात्रा न दी हो तो प्रति एकड़ 6 कि.ग्रा. नाइट्रोजन दें तथा सिंचाई करें।

वृद्धि नियामकों का प्रयोग

घीया (लौकी) की फसल में इथ्रैल नामक दवा के प्रयोग से अधिक उपज प्राप्त होती है। इस दवा से उपचार के लिए फसल का दो सच्ची पत्ती और चार सच्ची पत्ती की अवस्था पर उपचार करने की आवश्यकता होती है। इथ्रैल नामक दवा के प्रयोग के लिए 100 पी. पी. एम. का घोल बनाएं (4 मि.ली. इथ्रैल 50 प्रतिशत को 20 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ फसल पर प्रयोग करें) तथा ऊपर बताई 2 और 4 पत्ती की अवस्थाओं पर छिड़काव करें। इन दवाओं के प्रयोग से मादा फूल अधिक संख्या में आते हैं जिससे उपज में वृद्धि हो जाती है। ध्यान रखें कि घोल में चिपचिपाहट लाने वाला पदार्थ (जैसे कि सेल्वेट-99, टिट्रान या अन्य) भी मिला लें।

अरबी

नाइट्रोजन की खाद खड़ी फसल में दो बार दें - पहली बिजाई के लगभग 3-4 सप्ताह बाद और इतनी ही मात्रा लगभग इतने ही दिनों के बाद।

शकरकन्दी

अप्रैल से जुलाई माह तक शकरकन्दी की काट खेत में लगाते हैं। शकरकन्दी की किस्में पूसा लाल व पूसा सफेद प्रयोग में लें। बिजाई के लिए 24,000 से 28,000 बेलों की कटिंग की एक एकड़ में आवश्यकता होती है। 60 सैं.मी. के फासले पर बनी डोलों में काट लगाएं। एक पौधे से दूसरे पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। खेत तैयार करते समय 10 टन गोबर की गली-सड़ी खाद, 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 200 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट तथा 55 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति एकड़ की दर से काटें लगाने से पहले दें।

अगेती फूलगोभी

फूलगोभी की किस्म पूसा कातकी लगाएं। इसकी अगेती खेती के लिए नर्सरी में बिजाई की जा सकती है। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 300-500 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी। इसके बीज का उपचार कैप्टान नामक दवाई से (ढाई ग्राम दवा प्रति किलो बीज की दर से) करें। बिजाई पंक्तियों में करें तथा नर्सरी उठी हुई बनाएं।

फलों में

नींबू वर्गीय फल

नए पौधों की हर सप्ताह सिंचाई करें। फलों को गिरने से बचाने के लिए महीने के शुरू में ही 6 ग्राम 2,4-डी, 12 ग्राम आरियोफन्जिन व 1500 ग्राम ज़िंक सल्फेट को 550 लीटर पानी में घोल बनाकर पौधों पर छिड़कें। फल देने वाले पौधों की सिंचाई 10-15 दिन के अंतराल पर करते रहें। कीड़ों व बीमारियों के नियंत्रण के लिए अप्रैल माह के लिए दी गई विधि अपनाएं। जब नींबूवर्गीय पौधों में कपास या सूरजमुखी की फसल खड़ी हो तो 2,4-डी की जगह 20 मि.ग्रा. प्रति लीटर एन.ए.ए. दवाई का प्रयोग करें।

आम

आम के फलों को गिरने से बचाने के लिए 1½ से 2% यूरिया का घोल छिड़कें।

आड़ू व अलूचा

बागों की सिंचाई नियमित रूप से करते रहें। फ्लोरेडासन व सनरेड किस्में पकने लगेंगी। यदि चेपा (माहू) का आक्रमण हो तो 200 मि.ली. डाइमिथोएट 30 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बेर

एक साल पुरानी टहनियों को 6 सेक्डरी तक काटें। बेर के पौधों की इस माह में कटाई-छंटाई पूरी करें। पूर्ण विकसित पौधों में 100 किलोग्राम प्रति पौधा गोबर की खाद डालकर गहरी जुताई करें व सिंचाई करें।

नोट : सदाबहार फलदार पौधों को गर्मी से बचाने का प्रबंध करें। पौधों के मुख्य तनों पर ब्लाईटॉक्स या बोर्डो मिश्रण का लेप लगाना चाहिए। छोटे पौधों को गर्मी से बचाने के लिए पौधे से 2 इंच की दूरी पर ढैंचा की बिजाई चारों तरफ करें।

पशुओं में

गाय-भैंस

मई मास में अधिक तापमान की संभावना रहती है या कहीं-कहीं आंधी-तूफान भी आ सकते हैं। अतः पशुओं का इस प्रकार से प्रबंधन करना चाहिए कि गर्मी के मौसम में होने वाले रोग, हीट स्ट्रोक (तापघात), पानी व नमक की कमी, भूख या पाचन कम होना या उत्पादन कम होने जैसी समस्याओं का सामना पशुपालकों को न करना पड़े। इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही कुछ महत्वपूर्ण प्रबंधन संबंधी सुझाव इस प्रकार हैं :-

- मई मास (या अप्रैल में) गलघोंटू व मुंह-खुर के टीकाकरण हो जाने चाहिएं। ध्यान रहे ये रोग पशुओं के लिए प्राणघातक साबित हो सकते हैं, अतः किसी भी भ्रम में न पड़कर (विशेषकर दूध-उत्पादन संबंधी) इन रोगों के टीकाकरण अपने पशु-चिकित्सक की सलाहानुसार करें।
- मई मास में लू एवं सीधी गर्म हवाओं से पशुओं का बचाव करें। पशुओं के लिए ऐसी व्यवस्था रखें कि जिससे पशुओं को छाया भी

मिले व सीधी लू भी न लगे। आमतौर पर पशुपालक अच्छी छाया के बाद इस तथ्य को नज़रंदाज़ कर देता है व पशु तापघात का शिकार हो जाते हैं।

- तापघात के लक्षण व पहचान-पशु का मुंह खोलकर तेज़ सांस लेना, बढ़ी हुई हृदय गति अत्यधिक शारीरिक तापमान (106-108 डिग्री फार्नहाइट) इत्यादि।
- तापघात (हीट स्ट्रोक) से बचाने हेतु प्रबंधन : पशुओं को (विशेषकर भैंसों को) तापघात से बचाने हेतु पशुपालक कई प्रबंधन उपाय कर सकता है, जैसे कि 24 घण्टे ताज़ा पानी की व्यवस्था, पानी के साथ-साथ नमक भी उपलब्ध कराना (पोटाशियम की कमी रोकने हेतु) दोपहर की बजाय, सांय/रात्रि काल में भोजन की व्यवस्था, कम रेशे, उच्च ऊर्जा व सुपाच्य भोजन की उपलब्धता, पशु-आहार में बाई-पास प्रोटीन (मछली-चूरा इत्यादि) का इस्तेमाल, फार्म या पशु आवास में ताज़ा हवा के आवगमन की व्यवस्था, पंखे/कूलर आदि का प्रबंध, भीगी बोरी इत्यादि से तापमान नियंत्रण करना, फव्वारों का इस्तेमाल व दिन में 2-3 बार नहलाने की व्यवस्था आदि करके पशुपालक बिना किसी उत्पादन के नुकसान के इस मौसम में पशुओं को स्वस्थ रख सकता है। कई बार पशुपालक गर्मियों में दूध कम होने की समस्या रखता है। ध्यान रहे कि यदि पशु के शरीर में पानी की कमी होगी तो दूध भी कम होगा। अत: प्रयास करें कि हर पशु को 24 घण्टे ताज़ा पानी की उपलब्धता रहे और यदि किसी कारणवश ऐसा नहीं कर सकते तो कम से कम पशुओं को दिन में 4-5 बार नमक या लवणों-युक्त पानी ज़रूर पिलाएं व दिन में दो बार ज़रूर नहलाएं या उन पर पानी डालें। केवल मात्र इस प्रबंधन से ही किसान गर्मी में कम दूध के होने के नुकसान से बच सकता है व इस मौसम में अच्छे भाव से अपनी आय नियमित रख सकता है।
- हर मौसम में व हर पशु को खनिज मिश्रण (मिनरल मिक्चर) अवश्य दें, पशुपालक इसे हल्के में न लें। यह पाऊडर पशुओं के लिए 'रामबाण' साबित हो सकता है।
- पशु-आहार में गेहूं का चोकर और जौ की मात्रा बढ़ाएं।
- चारे के लिए बोई गई चरी, मक्का आदि की कटाई करें।
- भेड़ों में ऊन कतरने का कार्य करें।

यदि आप अपने पशुओं को मई मास में गलघोंटू रोग से बचाव का टीका लगवा लें तो बरसात में यह रोग नहीं होगा। गाय व भैंसों में फड़ सूजने या पुट्ठे सूजने का रोग बरसात के मौसम में हो जाता है। पुट्ठे सूजन रोग के बचाव का टीका पशुओं को लगाने से यह रोग नहीं होता। यह टीका पशु चिकित्सालय में मुफ्त लगता है। चार मास से 3 वर्ष तक की आयु के सभी गो-जाति के पशुओं को यह टीका अवश्य लगवा लेना चाहिए।

पशुओं में मुंह व खुरपका रोग से बचाव का टीका अपने नज़दीकी पशु चिकित्सालय से लगवा लें। यदि रोग हो जाए तो रोगी पशु को दूसरे पशुओं से अलग कर दें। ध्यान रहे कि एक रोग का टीका लगवाने के बाद दूसरे रोग का टीका 15 दिन बाद ही लगवाएं।

इस माह पशुओं को लू लगने से दूध की क्षमता घट जाती है और वे बीमार हो सकते हैं। उन्हें छायादार पेड़ों के नीचे रखें और पीने के साफ पानी की कमी न आने दें। भैंसों को पानी के छिड़काव व नहलाने से उनकी दूध देने की क्षमता बनी रहती है। पशुओं की खुराक में खनिज मिश्रण (मिनरल मिक्सचर) का लगातार प्रयोग करें। प्रत्येक पशु को 50 ग्राम खनिज मिश्रण रोज़ाना देना चाहिए। पशुओं के राशन में बिनौले की बजाय, बिनौले की खल तथा ग्वार की बजाय ग्वार की चूरी देनी चाहिए तथा पशुओं को संतुलित आहार देने से उनकी उत्पादन क्षमता बनी रहती है तथा इन्हें अन्य रोगों से बचाया जा सकता है तथा भैंसें इस मौसम में गर्मी में भी आती रहती हैं।

भेड़ें

इस मास भेड़ों की ऊन काटी जाती है। ऊन काटने से पहले भेड़ों में पुट्ठे सूजने के रोग से बचाव का टीका नज़दीकी पशु चिकित्सालय से अवश्य लगवाएं। भेड़ के पेट में कीड़े होने के कारण उनकी वृद्धि कम होती है और उनसे ऊन की प्राप्ति कम होती है। अपने पशु चिकित्सक की सलाह से भेड़ों को कृमिनाशक दवाई दें।

अब भेड़ों का प्रजनन काल आरंभ होने वाला है। अपनी भेड़ों में आप प्रजनन के लिए अच्छी नस्ल के मेढ़े का प्रयोग करें। अच्छी नस्ल के मेढ़े आप अपने क्षेत्र के भेड़ व ऊन केन्द्र, पशुधन फार्म हिसार एवं केन्द्रीय भेड़ प्रजनन फार्म, हिसार से ले सकते हैं।

कुक्कुटों में

मुर्गियों को रानीखेत एवं चेचक का टीका लगवाएं। छत पर सफेदी करें। मुर्गीघर पूर्व-पश्चिम दिशा में हो। मुर्गी आहार में लगभग 2 प्रतिशत प्रोटीन अधिक दें। दोपहर में जब खूब गर्मी पड़ती है तो खिड़कियों को गीली बोरी आदि से ढक कर रखें। मुर्गियों को ठण्डे पानी में इलैक्ट्रोलाइट पाऊडर डालकर पिलाएं। बिछावन को दिन में चार बार पलटें और आहार को भी फीडर में दिन में पांच-छ: बार डालें। मुर्गीघर के बाहर शहतूत के पेड़ लगाएं। छत पर भी फूस डालें। पिलाने के लिए पानी घड़े में रखें और पानी की पाइप को चारों तरफ से टाट लपेट कर रखें। प्रत्येक 15 दिन बाद मुर्गी आहार बनाएं।

घर-आंगन में

अप्रैल के महीने में मौसम परिवर्तन के कारण शरीर के लिए पानी की ज़रूरतें भी बढ़ जाती हैं और थोड़ी देर के बाद ही कुछ ठण्डा पीने का मन करता है। इन दिनों बाज़ार में पेय बनाने वाले फल एवं सब्जियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। अत: आप इनसे प्रचुर मात्रा में घर पर ही पेय पदार्थ बनाकर उपयोग में ला सकते हैं एवं इन्हें आय उपार्जन के रूप में भी अपना सकती हैं। पेय पदार्थों को घर पर बनाने के लिए आप अपने ज़िले में स्थित ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) या ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (बागवानी) से संपर्क कर सकते हैं।

फार्म प्रबन्ध

इस माह किसानों के फसल उत्पाद बिक्री के लिए तैयार होते हैं। किसानों को सलाह दी जाती है कि अपने अन्न उत्पाद गांव के व्यापारी या घुमन्तु व्यापारियों को न बेचकर केवल नियमित मण्डी एवं इलेक्ट्रॉनिक बाज़ार के माध्यम से बेचें। मण्डी में बिक्री के लिए ले जाने से पहले निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें :

1. मण्डी में ले जाने से पहले अनाज की भली प्रकार सफाई कर लें तथा अनाज को अच्छी तरह सुखा लें।
2. अलग प्रकार के अनाज को अलग-अलग बेचें। बढिया किस्म के अनाज की कीमत हमेशा ज़्यादा मिलती है।
3. फसल उत्पाद को ग्रेड करा लेने के बाद उसकी उचित कीमत लगती है। कृषि विभाग द्वारा प्रमुख मण्डियों में कपास व खाद्यान्नों की ग्रेडिंग के लिए केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन केन्द्रों पर किसानों की उपज की निःशुल्क ग्रेडिंग की सहूलियत उपलब्ध है।
4. कटाई के बाद किसान अपनी उपज को एक साथ ही मण्डियों में न लाकर उसे धीरे-धीरे लाएं जिससे कठिनाई न उठानी पड़े तथा उनकी उपज का सही मूल्य उन्हें मिल सके।
5. फसल उत्पाद को जहां तक संभव हो सहकारी संस्था अथवा सहकारी सोसाइटी के माध्यम से बेचें तथा यह ध्यान रखें कि उपज का समर्थन मूल्य प्राप्त हो। फसल बेचने में यदि कोई कठिनाई आए तो स्थानीय बाज़ार (मार्केट) के कर्मचारियों से संपर्क करें।
6. अपनी फसल खुली बोली पर ही बेचें व अपनी उपस्थिति में तोल करवाएं।
7. किसान से मण्डी में उतराई/अराई/सफाई के खर्च काटे/वसूल किए जाते हैं।
8. किसान अपनी फसल उत्पाद बिक्री का हिसाब करके 'जे' फार्म अवश्य लें।
9. किसान आने वाली खरीफ फसलों के बीजों की खरीद सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थानों के बिक्री केन्द्रों से ही करें।
10. किसान गुणवत्ता बीजों की ही बिजाई करें। ◆

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक निःशुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

पॉलीहाऊस में सूत्रकृमि - समस्या एवं समाधान

✍ **आदित्य, जे. एन. भाटिया एवं देवेन्द्र चहल**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरुक्षेत्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्तमान समय में संरक्षित खेती एक ऐसी उच्च तकनीकी प्रणाली है जिसके माध्यम से किसान अपनी आय को अपेक्षाकृत आसानी से बढ़ा सकते हैं। इस खेती की अपेक्षाओं के विपरित व सरंक्षण के बावजूद पॉलीहाउस में चूसक नाशियों, मृदा जनित रोगों व सूत्रकृमियों की बहुत सी समस्याएं हैं। मुख्य कारणों में पॉलीहाऊस की जगह का गलत चुनाव, कीट जाली का प्रयोग न करना, मिट्टी की जांच व उपचार न करना, जानकारी, प्रशिक्षण, स्वस्थ पौध व प्रशिक्षित कर्मियों के अतिरिक्त, रसायनों, जैवनाशियों आदि का अभाव तथा आई.पी.एम. जैसे घटकों की अवमानना या अभाव के कारण इस पद्धति से किसान विमुख होते जा रहे हैं। इन्हीं समस्याओं में से एक अति जटिल समस्या सूत्रकृमियों से होने वाली हानि एक प्रकोप के रूप मे उभरी है जिसको निःसंदेह अधिकतर किसान सुलझाने में विफल रहे हैं। प्रस्तुत लेख में सूत्रकृमियों की पहचान, लक्षण तथा समग्र प्रबन्धन के बारे में चर्चा की गई है जो पॉलीहाऊस उत्पादकों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

सूत्रकृमि क्या है?

यह एक प्रकार के सूक्ष्मदर्शी गोलाकार जन्तु है जो कि वास्तव में सूक्ष्मजीव नहीं है क्योंकि इनके शरीर में अस्थि पंजर, रक्त वहन तंत्र, श्वसन प्रणाली व उपांगों के अलावा उच्चवर्गीय जन्तुओं में पाने वाले सभी अंग विद्यमान होते है। यह जीव हवा को छोड़कर लगभग हर जगह जैसे कि समुद्रों, नदियों, तालाबों, खेती व बंजर मिट्टी के अलावा सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। एक मुट्ठी भर मिट्टी में हजारों नहीं तो सैंकड़ों सूत्रकृमि पाये जाते हैं।

सूत्रकृमियों की विविधता : मिट्टी में रहने वाले सूत्रकृमियों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है :

1. मुक्त रहने वाले सूत्रकृमि भक्षक : मुक्त सूत्रकृमि सभी प्रकार की मिट्टियों में पाये जाते हैं कार्बनिक मिट्टी में विशेषकर प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जबकि पौध परजीवी सूत्रकृमि हरियाली युक्त क्षेत्रों में चाहें वह चरागाही भूमि हो खेती की भूमि हो अथवा सामान्य हरियाली क्षेत्र हों, मात्र उनकी किस्में ही भिन्न हों सकती हैं।

2. पौध परजीवी सूत्रकृमि : पौध परजीवी सूत्रकृमि धागेनुमा, गोलाकार व उपांगों रहित जन्तु होते है जो आकार में 0.5-2.0 मि.मी. लम्बे होते हैं। यह धरती पर सभी प्रकार के पौधे जिसमें फसलें, जंगली पौधे, घास या पेड़ शामिल हो को खाते हैं। सभी प्रकार की जलवायु में पनपते हैं जहां वानस्पतिक जीवन होता है। पौध परजीवी सूत्रकृमियों की 4-5 प्रजातियां किसी भी पौधे से संबधित रहती है।

- **बाह्य परजीवी :** जो पौधे के अन्दर घुसे बिना बाहर मिट्टी में रहकर ही जड़ों व अन्य पौधों से रस चूसकर भोजन प्राप्त करते हैं।
- **अर्ध-अंतः परजीवी :** पौधों के अन्दर आधा घुसकर भोजन प्राप्त करते हैं।
- **अंतः परजीवी :** पौधों के अन्दर पूरी तरह से घुस कर भोजन प्राप्त करते हैं। ◆

[1] कृषि विज्ञान केन्द्र, कैथल

जैव ईंधनः एक नवीकरणीय स्रोत

✍ अभिलाष, विजय[1] एवं रमन[2]
कृषि मौसम विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

ऊर्जा मानव जाति और इसके सतत् विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण संसाधनों में से एक है। आज, ऊर्जा संकट हमारे सामने आने वाले वैश्विक मुद्दों में से एक बनता जा रहा है। ईंधन बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्हें ऊर्जा की पर्याप्त मात्रा में उत्पादन के लिए जलाया जाता है। रोज़मर्रा की जिंदगी के कई पहलू ईंधन पर आधारित हैं, विशेष रूप से माल, सामान, सामग्री और लोगों के परिवहन। जीवाश्म ईंधन जैसे पैट्रोल तेल, कोयले और प्राकृतिक गैस इत्यादि मुख्य ऊर्जा संसाधन हैं। जीवाश्म ईंधन दुनिया की ऊर्जा आवश्यकताओं का लगभग 80 प्रतिशत योगदान देते हैं। अधिकांश उद्योग उत्पादन प्रक्रिया के लिए डीज़ल मशीनों का उपयोग किया जाता है। परिवहन क्षेत्र में, निजी वाहन, बसें, ट्रक, और जहाज़ भी डीज़ल और गैसोलीन का महत्वपूर्ण मात्रा में उपभोग करते हैं। रोज़मर्रा जिंदगी की निर्भरता जीवाश्म ईंधन की एक मज़बूत स्थिति की ओर इशारा करती है। हालांकि, जनसंख्या का विकास घरेलू कच्चे तेल के उत्पादन के अन्तर्गत नहीं है। जैव ईंधन वो ईंधन हैं जो प्राचीन जानवरों और सूक्ष्मजीवों से आते हैं। जीवाश्म ईंधन निर्माण के लिए लाखों वर्षों की आवश्यकता है। इसलिए, जैव ईंधन गैर नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत होते हैं। तेल की कीमत में वृद्धि अक्सर आर्थिक मंदी, साथ ही वैश्विक और अंतरराष्ट्रीय संघर्षों की ओर ले जाती है। खासकर कुछ विकासशील देशों में, संसाधनों के इस्तेमाल से अर्थव्यवस्था में होने वाले महान विकास के कारण जीवाश्म ईंधन केवल 65 और वर्षों में खतम हो जाएगा। इसके अलावा जीवाश्म ईंधन के दहन द्वारा उत्पादित उत्सर्जन वायु प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग में भी योगदान देता है। अधिकांश देशों को ग्लोबल वार्मिंग मुद्दों पर अधिक से अधिक अंतर्राष्ट्रीय दबाव भी झेलना पड़ता है। इसलिए, वर्तमान और भविष्य को ध्यान में रखते हुए नवीकरणीय और स्वच्छ वैकल्पिक ईंधन की तरफ विकासशील देशों का रुझान बढ़ा है और जैव ईंधन लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं।

डीज़ल इंजन का आविष्कार डॉ. रुडॉल्फ डीज़ल ने किया था और इसे सन 1900 में पेरिस प्रदर्शनी में मूंगफली के तेल द्वारा चलाया गया था। इसलिए तब से यह स्थापित किया गया है कि, उच्च तापमान डीज़ल इंजन विभिन्न प्रकार के वनस्पति तेलों पर चलने में सक्षम है। लेकिन भारी पेट्रोलियम भंडार की खोजों ने दशकों तक पैट्रोल और डीज़ल के भाव को सस्ते रखा, और जैव ईंधन काफी हद तक भुला दिया गया। गैसोलीन और डीज़ल वास्तव में प्राचीन जैव ईंधन हैं। लेकिन उन्हें जीवाश्म ईंधन के रूप में जाना जाता है क्योंकि वे विघटित पौधों और जानवरों से बने होते हैं जो लाखों सालों तक ज़मीन में दफन थे। जैव ईंधन समान हैं, सिवाय इसके कि वे आज उगाए जाने वाले पौधों से बने हैं।

जैव ईंधन बनाने की प्रक्रिया : बायोडीज़ल और बायोथेनॉल जैव ईंधन के दो सबसे अधिक उपयोग किये जाने वाले प्रकार हैं जो मुख्य रूप से वनस्पति तेल, वनस्पति बीज और लिग्नोसेलुलोस से व्युत्पन्न होते हैं। बायोडीज़ल का उपयोग डीज़ल को बदलने के लिए किया जा सकता है अथवा बायोथेनॉल का इस्तेमाल पेट्रोल के स्थान पर किया जा सकता है।

[1]शोध छात्र, बागवानी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।
[2]शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

जैव ईंधन को किसी भी प्राकृतिक तेल या वसा को मेथानोल या इथेनॉल जैसे शराब के साथ रासायनिक रूप से संयोजित करके उत्पादित किया जा सकता है। मेथनॉल वाणिज्यिक उत्पादन में सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला जैव ईंधन है। जैव ईंधन पर कई शोधों से पता चला है कि वनस्पति तेल द्वारा बनाए गए ईंधन का उपयोग डीज़ल इंजनों पर ठीक से किया जा सकता है। बायोडीज़ल में कोई पेट्रोलियम नहीं होता है, लेकिन इसे कम या बिना किसी संशोधन के डीज़ल इंजन में डीज़ल ईंधन के साथ किसी भी अनुपात में मिश्रित किया जा सकता है। बायोडीज़ल को एसिड उत्प्रेरक की उपस्थिति में ट्रांसएस्टरिफिकेशन के माध्यम से सोयाबीन और मेथनॉल द्वारा उत्पादित किया जा सकता है। उचित प्रदर्शन और गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए ए.एस.टी.एम डी 6751 जैसे सख्त विनिर्देशों के अनुरूप ईंधन ग्रेड बायोडीज़ल को ट्रांसस्टेरिफिकेशन प्रक्रिया के माध्यम से उत्पादित किया जाता है। वास्तव में बायोडीज़ल का ऊर्जा घनत्व नियमित डीज़ल के करीब है। बायोडीज़ल और पेट्रोलियम-व्युत्पन्न डीज़ल के दहन गुणों के बीच समानताएं ऑटोमोबाइल के लिए इसे सबसे अधिक आशाजनक नवीकरणीय और टिकाऊ ईंधन बनाती हैं।

सूची 1 : बायोडीज़ल और डीज़ल के गुण

ईंधन गुण	बायोडीज़ल	डीज़ल
घनत्व (Density)15° सेल्सियस पर, ग्राम/सेंटीमीटर^3	0.8834	0.8340
चिपचिपापन (Viscocity) 15° सेल्सियस पर, मिलीमीटर^2/सेकंड	4.47	2.83
सल्फर, %	< 0.005	0.034
कार्बन, %	76.1	86.2
हाइड्रोजन, %	11.8	13.8
ऑक्सीजन, %	12.1	---
फ्लैश प्वाइंट, ° सेल्सियस	178	62
सीटेन नंबर	56	47
नेट कैलोरिफिक वैल्यू, किलो-जूल/किलोग्राम	37,243	42,588

जैव ईंधन के फीडस्टॉक्सः आमतौर पर बायोडीज़ल फीडस्टॉक वनस्पति तेल जैसे रेपसीड/तोरिया, सरसों, सोयाबीन, सूरजमुखी, ताड़ इत्यादि और कुछ अन्य गैर-खाद्य तेल जैसे की महुआ, नीम, करंज, जेट्रोफा से आता है।

पशु चर्बी एवं खाना पकाने के बाद बचे हुए तेल का उपयोग भी बायोडीज़ल के रूप में किया जा सकता है, जबकि काई/शैवाल जैसे नए स्रोतों को बायोफुल की तीसरी पीढ़ी माना जा रहा है।

दूसरी तरफ, बायोथेनॉल ज़्यादातर गन्ना, गेहूं, मक्का और आलू के किण्वन/खमीर/फर्मेंटेशन से बनता है।

भारत का परिदृश्य : वर्तमान में, एशिया के सबसे बड़े जैव ईंधन उत्पादक देश इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपींस, थाईलैंड, चीन जनवादी गणराज्य और भारत हैं। दूसरे शब्दों में, दक्षिणपूर्व एशियाई देशों के साथ दो आर्थिक दिग्गजों, यानी जैव ईंधन उद्योग में भारत और चीन एकमात्र प्रतिभागी हैं। जबकि, दक्षिणपूर्व एशियाई देश मुख्य रूप से निर्यात पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जबकि भारत और चीन अपने जैव ईंधन कार्यक्रमों को अपने उत्साही आर्थिक विकास को बनाए रखने और पेट्रोलियम निर्भरता को कम करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा संस्था की रिपोर्ट 'वर्ल्ड एनर्जी आउटलुक 2017' के मुताबिक, 2030 में दुनिया भर में ऊर्जा की मांग 50 प्रतिशत अधिक होगी। अकेले चीन और भारत को इस परिदृश्य के दौरान मांग में 45

प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। इस बीच, भारत का ऊर्जा का प्रमुख स्रोत कोयला है जिसका उपयोग बिजली उत्पादन के लिए किया जाता है और वर्तमान में, परिवहन ईंधन की बढ़ती मांग का सामना करने के लिए पेट्रोलियम आयात किया जाता है। भारत का इथेनॉल बाज़ार अपने बायोडीज़ल बाज़ार से अधिक परिपक्व है। 2003 में, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय ने इथेनॉल मिश्रित पेट्रोल (ई.बी.पी) कार्यक्रम का पहला चरण लॉन्च किया था जिसमें नौ राज्यों के लिए (कुल 29 में से) और चार केंद्र शासित प्रदेश (कुल 6 में से) गैसोलीन में 5 प्रतिशत इथेनॉल का मिश्रण अनिवार्य है। चूंकि भारत में खाद्य वनस्पति तेल की अपर मात्रा नहीं है, इसलिए यहाँ बायोडीज़ल उत्पादन मुख्य रूप से गैर-खाद्य वनस्पति तेल जैसे जेट्रोफा, माहुआ, करंज और नीम पर केंद्रित था। अप्रैल 2003 में बायोडीज़ल पर राष्ट्रीय मिशन शुरू किया गया था और वर्ष 2012 तक लक्षित 20 प्रतिशत (बी 20) तक पहुंचने के उद्देश्य से जेट्रोफा को सबसे उपयुक्त तेल बीज संयंत्र के रूप में पहचाना गया है। इसे प्राप्त करने हेतु, सरकार ने जेट्रोफा लगाने के लिए 11.2 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र को लक्षित किया था ताकि बायोडीज़ल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त तेल के बीज पैदा हो सकें।

फिलहाल, भारत ने प्रति वर्ष 2 मीट्रिक टन मेथनॉल उत्पादन क्षमता स्थापित की है। नीति आयोग द्वारा तैयार की गई योजना के मुताबिक इंडियन हाई एश कोयले, स्ट्रैंडेड गैस और बायोमास का उपयोग करके 2025 तक सालाना 20 मीट्रिक टन मेथनॉल का उत्पादन हो सकता है। नीति आयोग ने कच्चे तेल के आयात को 2030 तक अकेले मेथनॉल द्वारा 10 प्रतिशत तक प्रतिस्थापित करने के लिए एक रोड मैप तैयार कर लिया है। इसके लिए लगभग 30 मीट्रिक टन मेथनॉल की आवश्यकता होती है। मेथनॉल और डाई मिथाइल ईथर (DME), पेट्रोल और डीज़ल के मुकाबले काफी सस्ते हैं और ऐसा करने से भारत 2030 तक अपने ईंधन बिल को 30 प्रतिशत तक कम कर सकता है।

जैव ईंधन के लाभ :

- ❐ जैव-डीज़ल की सुवाह्यता/पोर्टेबिलिटी, उपलब्धता और नवीनीकरण।
- ❐ जैव ईंधन कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, कण तत्व और हाइड्रोकार्बन का डीज़ल की तुलना में कम उत्सर्जन करता है।
- ❐ बायोडीज़ल का उत्पादन डीज़ल से आसान एवं कम समय लेने वाला है।
- ❐ जैव ईंधन वाहन का प्रदर्शन बेहतर कर सकता है क्योंकि इसका सीटेन नंबरअधिक हैं। इसके अलावा, यह इंजन के जीवन को बढ़ाता है और रखरखाव की आवश्यकता को कम करता है
- ❐ स्पष्टता और शुद्धता के कारण जैव ईंधन जीवाश्म डीज़ल की तुलना में बेहतर लुब्रिकेटिंग गुण रखता है, जिस कारण इसका उपयोग डीज़ल इंजन में अतिरिक्त लुब्रीकेंट डाले बिना किया जा सकता है।
- ❐ जैव ईंधन स्थायी ग्रामीण विकास को प्रोत्साहित करने और ऊर्जा सुरक्षा के मुद्दे के समाधान के लिए एक बड़ी क्षमता रखती है।
- ❐ जैव ईंधन को डीज़ल की तरह ड्रिल, परिवहन या रिफाइन/परिष्कृत करने की आवश्यकता नहीं है।
- ❐ जैव ईंधन में डीज़ल से कम लागत लगती है क्योंकि इसे स्थानीय रूप से उत्पादित किया जाता है।
- ❐ सल्फर सामग्री, फ्लैश प्वाइंट, सुगंधित सामग्री और बायोडिग्रेडेबिलिटी के मामले में बायोडीज़ल डीज़ल ईंधन से बेहतर है।
- ❐ कम विषैलापन, अधिक बायोडिग्रेडेबल और उच्च फ्लैश प्वाइंट होने के कारण, इसका इस्तेमाल ज़्यादा सुरक्षित है।
- ❐ यह गैर-ज्वलनशील और गैर विषैला है, तथा टेलिपइप उत्सर्जन, प्रत्याक्ष घातक धुएं और गंध को भी कम कर देता है।
- ❐ बी 20 तक इंजन में संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं।
- ❐ उच्च दहन दक्षता।

जैव ईंधन के नुकसान :

- ❐ यह डीज़ल की तुलना में उच्च नाइट्रस ऑक्साइड (NOx) उत्सर्जित करता है।
- ❐ जैव ईंधन में तांबे और पीतल के खिलाफ जंग लगाने की तीक्ष्ण प्रवृत्ति होती है।
- ❐ उच्च विस्कॉसिटी/चिपचिपाहट (डीज़ल ईंधन से लगभग 11-17 गुणा अधिक) वनस्पति तेलों के बड़े आणविक द्रव्यमान और रासायनिक संरचना के कारण डीज़ल इंजन की इंजेक्टर प्रणाली में पंपिंग, दहन और परमाणुकरण में समस्याएं होती हैं।
- ❐ जैव ईंधन इंजन की गति और शक्ति को कम करता है। डीज़ल की तुलना में जैव ईंधन औसतन 5 प्रतिशत आनुपातिक भार कम उठा पाता है।
- ❐ जैव ईंधन को लम्बी अवधि के लिए भंडार में रखने से उसकी गुणवत्ता में गिरावट आती है।
- ❐ जैव ईंधन से इंजन के प्रमुख भाग और पिस्टन पर लगे इंजेक्टर ब्लॉक हो जाते हैं।
- ❐ पिस्टन और इंजन के प्रमुख भाग पर कार्बन जमा हो जाता है।
- ❐ जैव ईंधन से अत्यधिक घिसाव होता है जो इंजन के नुकसान का कारण बनता है। ◆

आकृति 1: दुनिया भर में जैव ईंधन के स्रोत

कीटनाशक रसायनों का सुरक्षित प्रयोग

✍ **जयलाल यादव एवं नरेन्द्र सिंह**
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरित क्रान्ति की सफलता से भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ इनका निर्यातक भी बन गया है। यह सब अर्जित करने में उन्नत किस्मों के बीजों, खादों व उर्वरकों, अभियांत्रिकी तथा कीटनाशक रसायनों का योगदान सर्वोपरि है। भारत की जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए जल्द ही दूसरी हरित क्रांति की आवश्यकता होगी। दूसरी हरित क्रान्ति के अंतर्गत निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में भी कीटनाशक रसायनों के प्रयोग का योगदान अहम् होगा।

भारत में पेस्टीसाइड्स की कुल खपत विश्व के कुल पेस्टीसाइड्स उत्पन्नता की मात्र दो प्रतिशत है या फिर ये कहें कि हमारे देश में प्रति हैक्टेयर औसतन केवल 380 ग्राम पेस्टीसाइड का प्रयोग होता है जबकि अनेक विकसित देशों में जैसे अमेरिका, जापान व अन्य यूरोपियन देशों में प्रति हैक्टेयर प्रयोग का स्तर 16-17 किलोग्राम है।

कीटों पर अपने शीघ्र व प्रभावकारी असर के कारण पिछले कुछ दशकों में अनेक प्रकार के कीटनाशक बाज़ार में आए तथा इनका अंधाधुन्ध प्रयोग हुआ। इसके परिणामस्वरूप अनेक समस्याएं जैसे पर्यावरण प्रदूषण, खाद्य पदार्थों व भूमि में कीटनाशक अवशेषों की उपस्थिति, जल प्रदूषण, कीटों में कीटनाशकरोधी क्षमता पैदा होना, मित्र जीवों को हानि आदि भी सामने आई हैं। इसके अलावा इनके ज़हरीले प्रभाव के कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी कई विकार उत्पन्न हुए हैं तथा अनेक जानें भी गई हैं। उपर्युक्त कुप्रभावों को ध्यान में रखते हुए कीटनाशकों के सुरक्षित प्रयोग करने के उपायों की जानकारी होना बहुत आवश्यक है।

कीटनाशकों के सुरक्षित प्रयोग से अभिप्राय यह है कि इनका प्रयोग सावधानी से हो ताकि मनुष्य, पशु-पक्षी व मित्र जीव इनके दुष्प्रभाव से बचे रहें तथा पर्यावरण को भी कम हानि हो। हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि कीटनाशक किसी भी तरह से, चाहे स्पर्श द्वारा या निगले जाने से अथवा सांस द्वारा, हमारे शरीर में प्रवेश न करें। कीटनाशक रसायनों को कीटों के खिलाफ केवल अन्तिम हथियार के रूप में ही प्रयोग करना चाहिए।

कीटनाशकों के सुरक्षित इस्तेमाल के उपाय

क. कीटनाशक प्रयोग करने से पहले :

❐ कीटनाशक (दवाई) के डिब्बे, पैकेट या बोतल पर चिपके लेबल अथवा साथ लगे कागज़/पुस्तिका में लिखे निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़ें व सुरक्षा सम्बन्धी सावधानियों पर कड़ाई से अमल करें। लेबल पर कीटनाशक प्रयोग के मियाद की तारीख अवश्य चैक करें।

❐ विष सम्बन्धी जानकारी देने वाले संकेतों को समझें। लाल त्रिकोण अत्यन्तन विषैला तथा पीला, नीला व हरा त्रिकोण क्रमशः बहुत विषैला, मध्यम विषैला व हल्का विषैला दर्शाते हैं।

❐ कीटनाशक प्रयोग के लिए शान्त व साफ मौसम वाला दिन चुनें। हवा की गति 5 किलोमीटर प्रति घंटा या उससे कम हो तो अच्छा होगा।

❐ कीटनाशकों से सीधे स्पर्श से बचें तथा इन्हें शरीर के किसी भी अंग पर न गिरने दें। सांस द्वारा भी कीटनाशक को अन्दर न जाने दें। इसके लिए रबड़ के दस्ताने, रबड़ के बूट व चश्मे पहनें तथा नाक पर गैस-मास्क लगाएं अथवा इसे मलमल के कपड़े से ढांपें। ऐसे एप्रेन अथवा कपड़े पहनें जिनसे सारा शरीर ढका रहे।

❐ छिड़काव पम्प अथवा धूड़ा मशीन का निरीक्षण करें तथा यदि इनसे कोई रिसाव/बिखराव हो रहा हो तो उसे ठीक करें।

❐ छिड़काव/धूड़ा करने वाला (ऑप्रेटर) एक स्वस्थ वयस्क होना चाहिए तथा उसके शरीर पर कोई घाव/फोड़ा आदि न हो। अन्यथा घाव पर जल-रोधि पट्टी लगा कर उसे सीलबंद कर दें।

❐ ऑप्रेटर स्प्रे पम्प/धूड़ा मशीन चलाने का प्रशिक्षण प्राप्त करें।

❐ साफ पानी, तौलिया, साबुन आदि की व्यवस्था करें।

❐ कीटनाशक को उसकी मूल पैकिंग/डिब्बे में ही रहने दें (दूसरी बोतल/डिब्बे आदि में न डालें।

❐ कीटनाशक के डिब्बे/बोतल आदि को सावधानी से खोलें। इन्हें भूलकर भी मुंह से न खोलें तथा न ही सूंघें।

❐ कीटनाशक को पानी में हाथ से न मिलाएं बल्कि किसी छड़ी आदि का प्रयोग करें।

❐ कीटनाशकों का भण्डारण बच्चों व पालतू जानवरों की पहुंच से दूर अलग कमरे/अलमारी में करें तथा ताला लगाकर रखें।

❐ छिड़काव वाले खेत/स्थान के पास खाने-पीने की वस्तुएं न रखें।

❐ बच्चों को कीटनाशक प्रयोग की अनुमति न दें।

❐ खाली पेट छिड़काव न करें क्योंकि ऐसा करने से दवाई का कुप्रभाव होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

ख. कीटनाशक प्रयोग करते समय :

❐ छिड़काव/धूड़ा करते समय छिड़कावकर्त्ता (ऑप्रेटर) अपनी पीठ उस दिशा में रखें जिधर से हवा आ रही हो ताकि दवाई शरीर पर न गिरे।

❐ इस दौरान कुछ भी खाना-पीना अथवा धूम्रपान करना वर्जित है।

❐ लगातार व देर तक छिड़काव/धूड़ा न करें तथा बीच-बीच में कीटनाशक प्रयोग किए खेत से दूर विश्राम करें। विश्राम के समय नींबू-पानी लेना लाभप्रद है।

❐ कीटनाशक का फसल से दूर बहाव (ड्रिफ्ट) को रोकने के लिए नोज़ल को फसल की सतह के निकट रखें, अधिक ऊपर न उठाएं।

❐ तेज़ धूप व गर्मी अथवा तेज़ हवा के समय कीटनाशकों का प्रयोग न करें। अगर स्प्रे करना बहुत आवश्यक हो तो फव्वारे की बूंदों को थोड़ा मोटा करें।

❐ बन्द नोज़ल या पाईप को खोलने के लिए मुंह से फूंक मार कर साफ करने का प्रयास न करें।

❐ दवाई भरते समय इसे स्प्रे पम्प अथवा टंकी पर न छलकने दें या इसके लिए कीप का प्रयोग करें।

❐ छिड़कावकर्त्ता के पास अन्य व्यक्ति मौजूद रहे ताकि विष चढ़ने की स्थिति में वह उसे सम्भाल सके।

ग. कीटनाशक प्रयोग के बाद :

❐ छिड़काव/धूड़ा करने के तुरन्त बाद दवाई से सने कपड़े, जूते, दस्ताने आदि उतार दें।

❐ कीटनाशक के खाली डिब्बों/बोतलों को न तो खेत में खुला छोड़ें तथा न ही अन्य काम में लें। इन्हें तोड़ कर चपटा कर दें तथा खाली पड़ी बंजर ज़मीन में गहरा दबा दें।

❐ कीटनाशक के घोल को छिड़काव पम्प में न रहने दें। पम्प व नालियों को साफ पानी से धोंए व खाली करें। नालियों को गोलाई में समेट कर भण्डार में रखें। (शेष पृष्ठ 23 पर)

मानव स्वास्थ्य और बाजरा

✍ सागर, संजय कुमार सनाढ्य[1] एवं के. डी. सहरावत
पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

दुनिया के शुष्क भूमि क्षेत्रों में बाजरा एक पारंपरिक प्रधान भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है। भारत 6.98 मिलियन हैक्टेयर के क्षेत्रफल में से 8.06 मिलियन टन वार्षिक उत्पादन के साथ बाजरा का सबसे बड़ा उत्पादक है और देश की खाद्यान्न टोकरी में 10 प्रतिशत योगदान करता है। बाजरा में अन्य मिलेट्स की तुलना में काफी अधिक मात्रा में प्रोटीन (12-16 प्रतिशत) और वसा(4-6 प्रतिशत) पाई जाती है।

100 ग्राम बाजरे में निम्नलिखित पोषण तत्व होते हैं : ऊर्जा 360 कैलोरी, नमी 12 ग्राम, प्रोटीन 12 ग्राम, वसा 5 ग्राम, खनिज 2 ग्राम, रेशा 1 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट 67 ग्राम, कैल्शियम 42 मिलीग्राम, फास्फोरस 242 मिलीग्राम, और लोहा 8 मिलीग्राम। बाजरा में मौजूद महत्वपूर्ण पोषक तत्वों में प्रतिरोधी स्टार्च, ऑलिगोसेकेराइड, वसा, प्रति उपाचक जैसे कि फिनोलिक अम्ल, एवेनथ्रा माइड्स, फ्लेवोनोइड्स, लिग्नान्स और फाइटोस्टेरॉल शामिल हैं जो कई स्वास्थ्य संबंधी लाभों के लिए ज़िम्मेदार माने जाते हैं।

बाजरा से स्वास्थ्य संबंधित तथ्य : खनिजों और प्रोटीन की अधिक मात्रा के कारण, बाजरा के कई स्वास्थ्य संबंधित लाभ हैं। इसमें प्रोटीन के अतिरिक्त मैग्नीशियम, फास्फोरस, जस्ता आदि जैसे कई आवश्यक खनिज होते हैं एवं आवश्यक अमीनो अम्ल और विटामिन्स भी होते हैं जो इसके निम्नलिखित चिकित्सीय गुणों में योगदान करते हैं।

पेट के अल्सर के इलाज में फायदेमंद : पेट के अल्सर को ठीक करने के लिए बाजरा की सलाह दी जाती है।पेट के अल्सर का सबसे आम कारण भोजन के सेवन के बाद पेट में अतिरिक्त अम्लता है। बाजरा बहुत कम खाद्य पदार्थों में से एक है जो पेट की क्षारीयता को बदल देता है और पेट के अल्सर को रोकता है या अल्सर के प्रभाव को कम करता है।

हृदय की सेहत के लिए फायदेमंद : बाजरे में लिग्नान्स और फाइटो स्टेरॉल मज़बूत प्रति उपाचक के रूप में काम करते हैं और इस तरह हृदय से संबंधित बीमारियों को रोकते हैं। यही कारण है कि बाजरा हृदय स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता है। बाजरा में मौजूद मैग्नीशियम की उच्च मात्रा रक्तचाप को नियंत्रित करने और हृदय के तनाव से राहत देने में सहायक है।

मैग्नीशियम की उच्च मात्रा के कारण लाभकारी : बाजरा में मैग्नीशियम की उच्च सांद्रता होती है जो अस्थमा रोगियों के लिए श्वसन समस्याओं की गंभीरता को कम करने में मदद करता है और माइग्रेन को कम करने में भी प्रभावी है।

हड्डी के विकास और मरम्मत में मददगार : बाजरा में फास्फोरस की उच्च मात्रा होती है। जोकि हड्डियों की वृद्धि और साथ-साथ एटीपी के विकास के लिए फास्फोरस बहुत आवश्यक है जो हमारे शरीर की ऊर्जा मुद्रा है।

कैंसर जनित रोगों में उपयोगिता : बाजरा कैंसर होने के जोखिम को कम करने के लिए जाना जाता है। संभवतया इसका कारण फाइटेट यौगिक एवं मैग्नीशियम की उच्च मात्रा हो सकती है।

मोटापे में मददगार : वज़न कम करने की कोशिश कर रहे लोगों के सामने सबसे बड़ी चुनौती उनके भोजन के सेवन को नियंत्रित करना है। बाजरा वज़न घटाने की प्रक्रिया में सहायता कर सकता है क्योंकि बाजरा में रेशे की मात्रा अधिक होती है जिसकी वजह से पचाने में समय लेता है। इस तरह, बाजरा लंबे समय तक भूख मिटाता है और इस तरह भोजन की खपत को कम करने में मदद करता है।

मधुमेह के लिए फायदेमंद : मधुमेह को नियंत्रित करने के लिए बाजरा बहुत प्रभावी है। इसकी उच्च रेशे की मात्रा के कारण, यह धीरे-धीरे पचता है और रक्त में ग्लूकोज़ को अन्य खाद्य पदार्थों की तुलना में धीमी गति से मुक्त करता है। बाजरा इंसुलिन संवेदनशीलता बढ़ाने और ट्राइग्लिसराइड्स के स्तर को कम करने के लिए जाना जाता है। यह प्रभावी रूप से मधुमेह रोगियों में रक्त शर्करा के स्तर को लंबे समय तक बनाए रखने में मदद करता है।

उदरीय रोग के लिए फायदेमंद : उदरीय रोग एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने आहार में ग्लूटेन की थोड़ी मात्रा भी बर्दाश्त नहीं कर सकता है। दुर्भाग्य से, अधिकांश सामान्य अनाज जैसे चावल, गेहूं आदि में ग्लूटेन मौजूद होता है। बाजरा एकमात्र ऐसा अनाज है जिसमें कोई ग्लूटेन मौजूद नहीं होता है। इस प्रकार यह उदरीय रोग वाले लोगों के लिए उपयुक्त है।

कोलेस्ट्रॉल में कमी : यह सामान्य बात है कि बाजरा उच्च कोलेस्ट्रॉल स्तर से पीड़ित लोगों के लिए सुझाया जाता है। बाजरा में एक प्रकार का फाइटो केमिकल होता है जिसे फाइटिक अम्ल कहा जाता है जो कोलेस्ट्रॉल के चयापचय को बढ़ाने और शरीर में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को स्थिर करने के लिए माना जाता है।

सभी आवश्यक अमीनो अम्ल : अमीनो अम्ल हमारे शरीर के सुचारू संचालन के लिए आवश्यक हैं। बाजरा खाद्य पदार्थों में से एक है जिसमें सभी आवश्यक अमीनो अम्ल होते हैं। इनमें से अधिकांश अमीनो अम्ल खाना पकाने की प्रक्रिया में खो जाते हैं क्योंकि ये अमीनो अम्ल उच्च तापमान को सहन नही कर सकते हैं। इस प्रकार कम पके हुए रूप में सेवन करना बेहतर होता है, ताकि इन अमीनो अम्ल में से कुछ को संरक्षित किया जा सके।

पित्त की पथरी को रोकने में फायदेमंद : बाजरा में उच्च रेशे की मात्रा के कारण पित्त की पथरी होने के जोखिम को कम करने के लिए भी जाना जाता है। बाजरा में उपस्थित अघुलनशील रेशे हमारे तंत्र में अत्यधिक पित्त के उत्पादन को कम करते हैं।

एंटी-एलर्जी गुण : बाजरा लाभकारी गुणों का खजाना है। इसका बीज बहुत सुपाच्य होता है और इससे एलर्जी की संभावना बहुत कम होती है। इसके हाइपो-एलर्जिक गुण के कारण, इसे शिशुओं, स्तनपान कराने वाली माताओं, बुजुर्गों के आहार में सुरक्षित रूप से शामिल किया जा सकता है।

अन्य उपयोग : चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन से पता चला है कि बाजरा के उपयोग से शरीर को विष विहीन करता है, श्वसन स्वास्थ्य में प्रतिरक्षा बढ़ाता है, ऊर्जा का स्तर बढ़ाता है और मांसपेशियों में सुधार होता है और तंत्रिका तंत्र और उपापचय सिंड्रोम और पार्किंसंस रोग जैसे कई अपक्षयी रोगों के खिलाफ सुरक्षात्मक हैं।

बाजरा की कम लोकप्रियता के कारण :

1. किसानों और प्रोसेसर के बीच तकनीकी-जानकारियों का अभाव।
2. भोजन को अपनाने और विविधीकरण में सांस्कृतिक मुद्दों का जोड़।
3. बाजरा के पोषक तत्वों के बारे में लोगों में जागरूकता की कमी और एक आम राय है कि बाजरा गरीब आदमी का भोजन है।
4. उपभोक्ताओं को खरीदने और उपभोक्ता के बीच अनिच्छा। ◆

[1]कृषि महाविद्यालय, सी.एस.के.एच.पी.के.वी., पालमपुर (हिमाचल प्रदेश)

हर कदम : कृषक महिलाओं के संग

✍ पूनम यादव, संतोष रानी[1] एंव सूबेसिंह[2]
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत की कुल आबादी में लगभग आधी महिलाएं हैं। इनमें से अधिकतर महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हैं। ये अधिकांश लघु या सीमान्त कृषक परिवारों अथवा भूमिहीन परिवारों से संबंधित हैं। कृषक परिवारों में महिलाओं की भूमिका सर्वविदित है। बच्चों को पालने के अलावा महिलाओं से भोजन तैयार करने, घर का रखरखाव करने, फसल तथा पशु पालन में सहायता करने और अपने परिवारों के सामान्य स्वास्थ्य की देखभाल करने की अपेक्षा की जाती है। ग्रामीण महिलाएं भारत सहित सभी विकासशील देशों मे अर्थव्यवस्था में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्पादक कार्यबल सिद्ध हुई हैं।

कृषक महिला सशक्तिकरण व स्वावलम्बन की गूंज हर तरफ है। अतः आवश्यकता है कि सीमित संसाधनों व परिवार के साथ सामन्जस्य बनाते हुये महिलाओं के तकनीकी ज्ञान, कौशल व दक्षता को बढ़ाया जाये ताकि वह आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर व सशक्त बनें। इस प्रकार उनके आचार-विचार व आचरण में सुधार करके परिवार में अहम् हिस्से की तरह पहचान बनाकर लैंगिक असमानता को दूर किया जा सकता है। सही मायने में महिला सशक्त तभी होगी जब वह आत्मनिर्भर होगी, उसमें आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की भावना जागेगी। महिलाओं की भूमिका उन परिवारों में और भी अधिक बढ़ जाती है जहां पर उसके पति या अन्य पुरुष काम की खोज में शहर पलायन कर जाते हैं, पति की मृत्यु होने पर अथवा तलाक होने पर या किसी कारणवश उन्हें अलग रहने पर विवश होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यदि महिलाओं को गांव में रहकर रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराये जायें, उनकी भागीदारी, योग्यताओं एवं रूचियों को ध्यान में रखते हुये उन्हें आत्मनिर्भर व स्वावलम्बी बनाया जा सकता है ताकि वह स्वरोज़गार द्वारा अपनी जीविकोपार्जन में वृद्धि कर परिवार को सामाजिक व आर्थिक रूप से सुदृढ बना सकें।

कृषक महिलाओं को खेती के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय भी करने होंगे, ताकि वे अधिक आय का सृजन कर आर्थिक रूप से सशक्त बन सकें। कृषि के अतिरिक्त यदि व्यावसायिक कार्यों की बात करें तो अधिकतर महिलाएं खाद्य प्रसंस्करण में पारंगत होती हैं और घर पर ही विभिन्न उत्पादों को बना लेती हैं। इन परंपरागत खाद्य उत्पादों की बाज़ार में अधिक मांग होने के कारण इन्हें वृहद् व व्यावासायिक रूप दिया जा सकता है। टमाटर की अधिकता होने पर कम मूल्य में कैचप, चटनी, प्यूरी आदि बना सकती हैं। इसी प्रकार महिलाएं जैम, जैली, गेहूं का दलिया, बेसन, फलों के रस से अनेक पेय, मेथी आदि सुखाकर बेमौसम में बेचकर वर्षभर आय कमा सकती हैं। पौष्टिक व स्वादिष्ट अचार, पापड़, बडी घर पर बनाकर महिलायें आय कमा सकती हैं। पूरे वर्ष मशरूम उत्पादन कर महिलाएं घर बैठे स्वरोज़गार पा सकती हैं। मशरूम पौष्टिकता व आय की दृष्टि से युवाओं व महिलाओं में लोकप्रिय है। मशरूम प्रसंस्करण व मूल्य संवर्धन कर भी कमाई की जा सकती है। चूंकि पशुपालन सम्बंधी 80 प्रतिशत कार्य महिलाओं द्वारा ही किया जाता है। अतः पशुपालन को व्यावसायिक स्तर पर शुरू किया जा सकता है। इसमें गाय-भैंस पालन, मुर्गीपालन, बकरी पालन जैसे रोज़गार के साथ वर्मीकम्पोस्ट (केंचुआ खाद) तैयार कर आय अर्जित की जा सकती है। महिलाएं दूध से बने पदार्थ दही, पनीर, मिठाइयां आदि तैयार कर आय अर्जित कर सकती हैं। पशु आधारित व्यवसायों को अपनाकर महिलायें न सिर्फ आय अर्जित करेंगी बल्कि पशुजन्य पदार्थों को रोज़ाना घर में इस्तेमाल कर परिवार को पोषण सुरक्षा भी प्रदान कर सकेंगी।

छोटे पैमाने पर कार्यरत खेतिहर महिलाओं के साथ संपर्क बनाए रखने, उन तक पहुंच स्थापित करने तथा उनके क्रियाकलापों को व्यवसायीकृत करना आज की आवश्यकता है। अब कृषि का एक प्रमुख उद्देश्य महिलाओं का सशक्तिकरण होना चाहिए। कृषि विज्ञान केन्द्रों के विषयवस्तु विशेषज्ञों द्वारा महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनाने के लिए सार्थक प्रयास किये जा रहे हैं। इसके लिए प्रशिक्षण, अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन, परिणाम प्रदर्शन, विधि प्रदर्शन, प्रक्षेत्र दिवस, किसान गोष्ठी व अन्य प्रसार माध्यमों द्वारा नई-2 उन्नत तकनीकों की जानकारी उपलब्ध करायी जा रही है। केन्द्रों में महिलाओं के लिए कुछ कार्यक्रम 'करके सीखो व देखकर विश्वास करो' पर आधारित कराये जाते हैं। इससे महिलाओं में सीखने या करने के लिए और अधिक उत्साह बढ़ जाता है। कृषि विज्ञान केन्द्रों के विशेषज्ञों द्वारा महिलाओं के लिए विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण कार्यक्रम जैसे मोमबत्ती बनाना, खिलौने बनाना, जैम, जैली, अचार, मुरब्बा, मशरूम उत्पादन, उद्यमिता विकास, कृषि विपणन, कढ़ाई, सिलाई-बुनाई, मधुमक्खी पालन, वर्मी कम्पोस्ट, सब्जी उत्पादन, पोषण वाटिका, बीजोपचार, पशुपालन, सुरक्षित अन्न भंडारण आदि का आयोजन किया जाता है। ये प्रशिक्षण कार्यक्रम केन्द्र व गांवों में जाकर विशेषज्ञों द्वारा दिये जाते हैं। गांव में ही उनकी आवश्यकता आधारित प्रशिक्षण मिल जाने के कारण महिलाएं बडी संख्या में इन कार्यक्रमों में भाग लेती हैं। महिलाएं समूह के माध्यम से उपर्युक्त विषयों को अपनाकर अपनी आजीविका का एक साधन बना सकती हैं।

कृषक महिलाओं के सशक्तिकरण को वर्तमान सरकार ने गंभीरता से लिया है और माना है कि कृषि विकास की हर योजना में महिलाओं की भागीदारी अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। इसके लिए योजनाओं में आवश्यक प्रावधान भी किये गये हैं। भारतीय सरकार के महत्वाकांक्षी राक्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन में आबंटित बजट की 30 प्रतिशत राशि कृषक महिलाओं के लिए निर्धारित की गई है।

कृषक महिला सशक्तिकरण हेतु सुझाव :

1. महिलाओं के लिए कृषि तकनीकों में परिवर्तन करके उनको प्रयोग योग्य बनाना चाहिए, जिसे वे आसानी से ग्रहण कर सकें। इसके लिए कृषि प्रसार क्षेत्र के विशेषज्ञ पदों पर महिलाओं को लाना चाहिए।
2. ऐसी महिलाएं जिनके ऊपर कार्यभार अधिक है, उन पर विशिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है कि श्रम बचत तकनीकें उनके लिए घर एवं प्रक्षेत्र पर प्रदान की जा सकती हैं।
3. खाद्य प्रसंस्करण क्रियाओं को घरेलू स्तर पर बढाना, सरल प्रंसस्करण क्रियाओं को बढ़ाना।
4. महिलाओं को सशक्त करने के लिए रोज़गारोन्मुखी प्रशिक्षण दिये जायें जिससे वे अपने व्यवसाय को आसानी से चला सकें।
5. कृषि उत्पादन की बिक्री में महिला कृषकों को विशेष रूप से लाभ देना चाहिए जिससे महिलाओं में खाद्य उत्पादन, प्रसंस्करण एवं बाज़ार से सम्बन्धित सकारात्मक प्रभाव पड़े।
6. भारत में कृषक महिलाओं व कृषि में उनकी सहभागिता को डेटाबेस तैयार किया जाए।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहाबाद।
[2]सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा), चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

7. खेतिहर महिलाओं के लिए आवश्यकता आधारित परामर्श सेवा प्रदान किया जाए।
8. महिलाओं को भूमि, पशुपालन एवं अन्य संपत्ति में समानता का दर्जा देना।
9. जब स्वसहायता समूह संबंधित परियोजनाओं को प्रभाव में लाया जाये तब महिला समूहों को प्राथमिकता दी जाये। महिलाओं को छोटी-छोटी बचत के लिए प्रोत्साहित करें।
10. महिलाओं की पोषण संबंधित आवश्यकताओं को पूर्ण करें।

उक्त तरीकों से कृषक महिलाएं कृषि उत्पादन में अपनी सार्थक भूमिका निभा रही हैं। देश के शीर्ष वैज्ञानिक डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन के अनुसार अगर सरकार महिला किसानों के लिए कोई नीति बना दे तो करोड़ों महिलाओं को मदद मिलेगी और इसमें काम कर रही महिलाओं को हक मिलेगा। साथ ही, रोज़गार की संभावनाओं को नए तरीके से परिभाषित किया जा सकेगा। महिलाओं को जानकारियों से लैस किया जाए। कृषक महिलाओं को सशक्त बनाना एक सतत प्रक्रिया है। समय की मांग है कि महिलाओं को उनकी क्षमता का अहसास कराया जाए, उनका भविष्य उज्ज्वल है, उन्हें इसके प्रति जागरूक किया जाए, उनका मार्गदर्शन और पोषण किया जाए। ◆

(पृष्ठ 20 का शेष)

- ❒ हाथ, पांव, मुंह आदि साबुन लगा कर साफ करें तथा बाद में स्नान करें।
- ❒ छिड़काव के समय प्रयुक्त हुए वस्त्रों व अन्य सामान को साबुन लगाकर धोएं।
- ❒ छिड़काव पम्प, बाल्टी, मापक जार आदि को नालों, तालाबों आदि में मत धोएं।
- ❒ बिखरी हुई दवाई को सूखी मिट्टी डाल कर सोख लें तथा उसे इकट्ठा कर पानी के स्रोतों से दूर मिट्टी में दबा दें।

घ. अन्य सुझाव :

- ❒ कीटनाशक छिड़के/धूड़ा किए गए खेत में कम से कम दो सप्ताह तक मवेशियों को न घुसने दें।
- ❒ फसल पकने से 15 दिन पहले छिड़काव/धूडा न करें।
- ❒ छिड़काव के 6 घण्टे के भीतर अगर बारिश हो जाए तो छिड़काव दोबारा करें।
- ❒ कीटनाशकों के अवशेषों को कम करने के लिए फलों व सब्जियों को नल के बहते पानी में भली प्रकार से धोएं।
- ❒ लापरवाही से अथवा दुर्धटनावश ज़हर चढ़ने पर रोगी का डॉक्टर से तुरन्त ईलाज करवाएं।
- ❒ परन्तु इससे पूर्व रोगी की प्राथमिक चिकित्सा शुरू कर दें। रोगी को तुरन्त दुर्घटना स्थल से हटाएं तथा दवाई से सने कपड़े, जूते आदि उतार दें।
- ❒ रोगी अगर होश में हो तो शीघ्रता से 2-3 गिलास साफ पानी पिलाएं व उल्टी करवाएं।
- ❒ शरीर के प्रदुषित भागों को साबुन लगाकर धोएं। आंख में दवाई गिरने पर आंख को 10-15 मिनट तक बार-बार साफ पानी से धोएं।
- ❒ तेज़ बुखार या पसीना आने पर ठण्डे पानी से शरीर पोंछें तथा कंपकंपी आने पर कंबल से ढकें। आवश्यकता पड़ने पर कृत्रिम श्वास भी दें। ◆

बाल अपराध रोकने में - माताओं की भूमिका

✍ **आरती कुमारी एवं शीला सांगवान**
मानव संसाधन एवं पारिवारिक अध्ययन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

युवाओं द्वारा अपराध जैसे चोरी, दूसरों पर हमला या संपत्ति की क्षति, नशीली दवाओं का सेवन, स्कूल से भागने, स्कूल छोड़ने, वयस्क अपराधी व्यवहार और दूसरों को चोट पहुंचाना आदि व्यवहार बढ़ रहा है। बाल दुर्व्यवहार और किशोर अपराध के बीच महत्वपूर्ण संबंध है। हम सभी जानते हैं कि बाल दुर्व्यवहार बाद में किशोर अपराध का कारण बनता है। बहुत सारे बच्चों में दुर्व्यवहार, घरेलू हिंसा, बच्चों का दुरुपयोग जो बाद में किशोर अपराध का विकास होना शुरू हो जाता है। बाल दुर्व्यवहार शब्द के व्यापक रूप में यौन-शोषण, उपेक्षा, शारीरिक शोषण भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक दुराचार शामिल हैं। जो बाल अपराधी बनने के प्रमुख कारण हैं। शारीरिक दुर्व्यवहार, शारीरिक चोट पहुंचाना या बच्चों को हर तरह से नुकसान पहुंचाना भी बाल-दुर्व्यवहार में शामिल है।

व्यक्तिगत जोखिम वाले व्यवहार जो युवा उम्र में बढ़ रहा है जैसे कि असामाजिक व्यवहार, मानसिक संज्ञानात्मक विकास, अतिसंवेदनशीलता और मानसिक चुनौतियों जैसे कई कारक शामिल हैं। ये सभी अपराधी व्यवहार परिवार से जुड़े कारकों से होता है। जैसे कि गरीबी, दुराचार, पारवारिक हिंसा, माता-पिता का तलाक, अभिभावक की मनोवैज्ञानिक समस्याएं, पारिवारिक असामाजिक व्यवहार, एकल अभिभावक परिवार और असंतुलित व्यवहार शामिल हैं। सबसे बड़ा कारण युवाओं में अपराध बढ़ने के प्रमुख कारण हैं अपराधी सहकर्मी, बेतरतीब पड़ोस, सत्तावादी परिवार, अपेक्षात्मक या शारीरिक रूप से दंडात्मक अभिभावक शैली बच्चों में अपराध की ओर बढ़ने की अधिक संभावना होती है जैसे कि अप्रभावी पर्यवेक्षण मनोवैज्ञानिक।

जो बच्चे अपने घर पर शारीरिक रूप से लड़ाई लड़ते हैं वे दूसरे बच्चों की तुलना में शारीरिक रूप से आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। इस बच्चे में ज़्यादा घरेलू हिंसा करने की संभावना है।

असंगत अनुशासन, पारिवारिक विवाद, असंतोष एवं कमज़ोर अभिभावक के बच्चों में बाल अपराध और किशोर अपराध बढ़ने की ज़्यादा संभावना है। बाल दुर्व्यवहार के अधिक से अधिक मामले आ रहे हैं। जो बच्चों के लिए नकारात्मक विकास के नतीजे हैं जैसे कि नकारात्मक सहकर्मी, अवसाद या चिंता दूसरों के प्रति हिंसा या व्यवहार संबंधी समस्याएं और भी कई कारण हैं जो बाल दुर्व्यवहार और किशोर दुर्व्यवहार की समस्याएं बढ़ाती हैं। जैसे कि माता-पिता की अपने बच्चों के संपर्क में कमी, भागीदारी में कमी, उदासीन, अभिभावन में बाल अपराध या बाल हिंसा का खतरा बढ़ जाना इत्यादि। आधिकारिक अभिभावक शैली उदासीन माता-पिता, नशीली पदार्थों का सेवन करने वाले परिवार, हिंसा संबधी वाले परिवारों में बाल अपराध और किशोर अपराध जैसी समस्याएं बढ़ जाती हैं। अपराधी व्यवहार या दुर्व्यवहार को विकसित करने का जोखिम अक्सर परिवार या पारिवारिक कारकों से होता है। उदासीन अभिभावक शैली के कारण अधिक से अधिक अपराधी व्यवहार बच्चों में विकसित होते हैं। किशोर अपराध कई कारणों से बढ़ते हैं। माता-पिता का

बच्चों के साथ नकारात्मक संबंध, शिक्षा में असफलता आदि। बाल और किशोर अपराध वयस्क अपराध के लिए एक प्रवेश द्वार है क्योंकि बड़े पैमाने पर आपराधिक व्यवहार की जड़ें बचपन की व्यावहारिक समस्याओं के कारण पूरी दुनिया में गंभीर समस्याएं पैदा करती हैं। आज यह बड़ी चिंता का विषय बन गया है कि बाल अपराध, किशोर अपराध बच्चों की सामाजिक या अपराधिक गतिविधियां जैसे कि चोरी करना, बाल या किशोर अपराध माता-पिता द्वारा निगरानी में कमी, असंगति, बहुत कठोर शारीरिक दंड से बढ़ता है। किशोर अपराध या युवा अपराध या नबालिगों या किशोरों के द्वारा अवैध व्यवहार भागीदारी। किशोर अपराधी एक ऐसा व्यक्ति होता है जो आमतौर पर अठारह साल की आयु से होता है। भारत में किशोर द्वारा अपराध बल में तेज़ी से बढ़ रहे हैं। किशोर अपराध बढ़ने के प्रमुख कारक हैं: सहकर्मी दबाव, भव्य जीवन शैली, माता-पिता से बहुत अधिक आज़ादी यहां तक कि साधारण जिज्ञासा भी भारत में बाल एवं किशोरों के बीच अपराधी प्रवृत्तियों के लिए अग्रणी है। मां अपने बच्चों के साथ गुणवत्ता संबंध स्थापित करके बाल अपराध और किशोर अपराध को बचपन से ही नहीं बढ़ने देती। अपराधिक गतिविधियों पर निगरानी रखती है। गलत व्यवहार पर नियंत्रण रखती है। बाल आचरण समस्याओं पर ध्यान देती है। शैक्षिक उपलब्धता, निर्णय लेने की शक्ति, जोखिम व्यवहार से बचने के तरीके इत्यादि में सहायता करती है।

अपराधिक गतिविधियों की रोकथाम में अपने बच्चों के साथ मां हमेशा महत्वपूर्ण संबंध बनाती है। घर के कार्य करके सकारात्मक अनुशासन को अक्सर विकास के लिए आवश्यक माना जाता है। हारलॉक (1978) में बताया था कि अनुशासन प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण साधन है समाजीकरण जिनमें माता-पिता बच्चों को एक महत्वपूर्ण दिशा में निर्देशित करते हैं जो उनकी संस्कृति मुख्यत: सामाजिक अनुशासन में मुख्य रूप से शामिल है। इनके अनुसार अभिभावक शैली के चार प्रकार हैं जिनमें कठोर अभिभावक शैली, अधिकारिक शैली, अनुमति शैली, असम्मिलित अभिभावक शैली सम्मिलित हैं।

सत्तावादी अभिभावक शैली : माता-पिता की इस शैली में बच्चों को कड़े नियमों का पालन करने की उम्मीद है। इस प्रकार की अभिभावक शैली में माता-पिता के माध्यम से स्थापित ऐसे नियमों के पालन करने में बच्चों में आमतौर पर विफलता होती है। इस तरह के अभिभावक शैली में माता-पिता की उच्च मांग होती है, सत्तावादी अभिभावक शैली, कठोर अभिभवक के रूप में वर्णित और कठोर नियमों और दिशाओं का पालन करते हैं। इस अभिभावक शैली में माता-पिता दंडात्मक शैली का पालन करते हैं। जिनमें बच्चों पर अत्यधिक दबाब डालते हैं। अधिक कठोर अभिभावक शैली में माता-पिता अपने बच्चों की ज़रूरतों के प्रति कम प्रतिसाद होते हैं। ये समस्याओं को हल करने के बजाए बच्चों से अधिक उम्मीद रखते हैं और अपने बच्चों को नियमों के बारे में जानकारी भी नहीं देते।

आधिकारिक अभिभावक शैली : यह अभिभावक शैली बहुत अधिक लोकतांत्रिक है। आधिकारिक माता-पिता अपने बच्चों के प्रति उत्तरदायी हैं सवाल-जबाव के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इस अभिभावक शैली में बच्चों की उम्मीदों को पूरा करने में सफल होते हैं। अगर बच्चे किसी नियम के पालन करने में विफल हो जाते हैं तो वो सज़ा देने के बजाए क्षमा करना उचित समझते हैं। आधिकारिक माता-पिता की शैली संतुलित संतृप्ति को वर्णित करती है और अपने बच्चे की भावना को समझते हैं। वे अक्सर समस्याओं को समझाने के लिए उचित मार्गदर्शन का प्रयोग करते हैं। आधिकारिक अभिभावक शैली बच्चों को स्वतंत्र होने के लिए प्रोत्साहित करती है। निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत निगरानी और बच्चों का विकास करने में अत्यधिक योगदान है। उचित व्यवहार का उपयोग करके बच्चों को समझायेंगे और दंडित नहीं करते हैं। आधिकारिक अभिभावक शैली अनुशंसित शैली है। जिनमें इसका परिणाम बच्चों के व्यवहार में बहुत अच्छा और बच्चों के अच्छे व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है।

अनुमोदक अभिभावक शैली : अनुमति शैली में अभिभावक माता-पिता शायद ही कभी अपने बच्चों को अनुशासन देते हों इस शैली में बच्चों में परिपक्वता की कमी होती है। इसमें ज़्यादा बच्चें माता-पिता पर ही निर्भर रहते हैं। अनुमति शैली में माता-पिता गैर पारदर्शी और उदार होते हैं। इस शैली में बच्चों को ज़्यादा परिपक्व होने का मौका नहीं मिलता। बच्चों में एक दोस्त की स्थिति होती है इसमें ज़्यादा मांग नहीं होती है लेकिन माता-पिता जैसा व्यवहार नहीं रहता। लेकिन माता-पिता बहुत ही ज़्यादा उत्तरदायी होते हैं। इसे कृपालु अधिनिदेशक या उदार परवरिश शैली भी कहते हैं। इस परवरिश शैली में माता-पिता बहुत ही कृपालु, अनिर्देशक या उदार होते हैं लेकिन कुछ मांगों पर नियंत्रण रखना बहुत ज़रूरी होता है। अनुमति परवरिश शैली में बच्चे अधिक आवेगी हो सकते हैं जैसे कि किशोर कदाचार और नशीली दवाओं के उपयोग में अधिक संलग्न हो सकते हैं। इस अभिभावक शैली में बच्चे अपने व्यवहार को नियंत्रण करना नहीं सीखते हमेशा उनकी विधि प्राप्त करने की अपेक्षा करते हैं।

असंबंध अभिभावक शैली : इस तरह के अभिभावक शैली में कुछ ही मांग, बहुत कम उत्तरदायी, बहुत ही कम बातचीत और अपने बच्चे से इस शैली में माता-पिता बिल्कुल संपर्क में नहीं रहते। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि अपने बच्चों की ज़रूरतों को पूरी तरह से नकार देते हैं। भावनात्मक रूप से पूरी तरह अलग-अलग रहते हैं। कोई भी मदद नहीं करते इस कारण बच्चों में नकारात्मक व्यवहार उत्पन्न होने लगता है समाज के विपरीत व्यवहार में जैसे कि दुर्व्यवहार चोरी करना, हिंसा करना इत्यादि शामिल हो जाता है। इस शैली के प्रभाव के कारण खासकर वयस्क कारक बच्चों में दुर्व्यवहार और वयस्क अपराध करने लगते हैं।

अवैध व्यवहार और नकारात्मक व्यवहार और नकारात्मक सहकर्मी से सीधा प्रभाव पड़ता है। जो किशोर में अपराध गतिविधि पनपती है इसको दूर करने में मां की अहम् भूमिका है। अत: मां की निगरानी किशोर अपराध को रोकने के लिए महत्वपूर्ण कारक है। किशोरावस्था में समस्याएं उत्पन्न होती हैं जो खासकर माताओं की अनुशासनात्मक प्रक्रिया से प्रभावित होते हैं। आधिकारिक अभिभावक शैली सबसे अधिक आमतौर पर सकारात्मक परिणाम के साथ जुड़े हुए हैं। मां शारीरिक दंड को नहीं अपनाती और प्यार से समझती है क्योंकि शारीरिक दंड और भी जोखिम बना देती है। माना गया है कि प्रारंभिक संबंध माता के आधार पर ही बच्चों के व्यवहार में बदलाव लाता है। अगर माता के साथ बच्चों का संबंध साकारात्मक है तो व्यवहार में सकारात्मक प्रभाव पड़ता है नहीं तो उसका उल्टा जो बाद में दुर्व्यवहार का रूप ले लेता है।

अनुशासन बच्चों के लिए बहुत ज़रूरी है। कार्य सामाजिक नियमों के अनुसार करना चाहिए 'अनुशासन जीवन में हर स्थान' हर समय आवश्यक है चाहे वह घर हो, समाज हो। मुख्यत: अनुशासन दो प्रकार के होते हैं आंतरिक अनुशासन और बाह्य अनुशासन।

बच्चों में यदि अनुशासन परिवार से ही गढ दिया जाता है तो नि:सन्देह अपने जीवन में सफलता पायेंगे। जब कोई बच्चा गलती करता है या नियम के विरुद्ध कार्य करने पर अनुशासन बनाये रखने के लिए दण्ड दिया जाता है या अनुशासन स्थापित करने के लिए मां उन्हें दंडित करती है।

मनोविज्ञान के अनुसार दण्ड देना और पुरस्कृत करना एक प्रकार से शिक्षा और व्यवहार में सहायता करने वाली दो परस्पर विरोधी प्रक्रियाएं हैं।

दण्ड और प्रोत्साहन निम्न प्रकार से सहयोग करता है:

1. असामाजिक गतिविधियों जैसे कि किसी को मारना, हिंसा, दुर्व्यवहार, अभद्र भाषा का प्रयोग करना, चोरी करना आदि।
2. सामाजिक गतिविधियों को प्रोत्साहित सामाजिक नियमों का पालन, व्यवहार में सकारात्मक आदि।

मनोविज्ञान की मानें तो पुरस्कार और दण्ड दोनों ही बच्चों के व्यवहार में परिवर्तन के लिए अत्यंत आवश्यक है। दण्ड के मुख्यत: दो प्रकार होते हैं जैसे कि सकारात्मक दण्ड और नकारात्मक दंड। आमतौर पर अभिभावक मां बच्चों का अनुशासन बनाए रखने के लिए निम्न श्रेणी के दण्ड का प्रयोग करता है। छोटे बच्चों के व्यवहार में बदलाव के लिए कभी-कभी मां शारीरिक दण्ड का भी प्रयोग करती है।

बाल अपराध रोकने में माताओं की भूमिका : मां ही बच्चों के विकास को आकार देने के लिए शिक्षक का काम करती है। मां ही अपने बच्चों को सकारात्मक विकास की ओर ले जाती है और सुरक्षित भावनात्मक संबंध अच्छा व्यवहार नैतिकता की मज़बूती भावना प्रदान करती है। मां ही अपने बच्चों के उच्चतम भविष्य, परिपक्व जिम्मेदार व्यक्ति बनाने के लिए उचित नियम और सीमाएं स्थापित करती है। मां की भूमिका बच्चों को अपराधों से रोकने में मदद करती है, बच्चों और युवाओं के ठिकाने, साथी और उनकी गलत गतिविधियों पर ध्यान देकर नियंत्रित करती है। हम सभी जानते हैं कि मां ही अपने बच्चों के जीवन को बेहतर समझती है। उनकी ज़रूरतों, अधिकारों और सेवाओं का ध्यान रखती है।

मां अपने बच्चों के लिए अनुकूल वातावरण बनाती है। जिससे की उनके बच्चों में शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास अच्छी तरह से हो। अपने बच्चों के पोषण, मनोरंजन, स्वास्थ्य और शिक्षा में अच्छी तरह से ध्यान देती है। अपने बच्चों को व्यापक और मानव दृष्टिकोण से बेहतर ढंग से सुसज्जित करती है।

अपने बच्चों के अपराधी व्यवहार रोकने में महत्वपूर्ण भागीदारी और देखभाल करती है। जिससे कि उनके बच्चों में अपराधी व्यवहार की प्रवृत्ति नहीं आये।

अगर मां आधिकारिक अभिभावक शैली का सबसे ज़्यादा प्रदर्शन करती है तो बच्चों में सकारात्मक परिणामों के लिए अनुकूल होता है और अपने बच्चों में अपराधिक व्यवहार रोकने के लिए हर प्रयास करती है।

उचित व्यवहार और अपनी भागीदारी, सकारात्मक व्यवहार संबंध, भावनात्मक, समर्थन, मांग को पूरा करती है, मार्गदर्शक का काम, निगरानी बहुत कठोर सज़ा से रोकती है। लगातार अपने बच्चों के संपर्क में रहती है और असंगत दोस्ती से रोकती है और अपराधिक गतिविधियों से अपने बच्चे को दूर रखती है, अपने और बच्चों के बीच सकारात्मक, भावनात्मक बंधन उच्च श्रेणी का स्थापित करती है। अधिक से अधिक समय व्यक्ति करती है और निगरानी के साथ-साथ अनुशासन का भी ध्यान रखती है। अपने बच्चों की हर ज़रूरत जैसे कि आराम, सुरक्षा, स्वतंत्रता, देखभाल, भरोसेमंद रूप से विश्वास दिलाती है और अपने बच्चों के साथ बंधन को सकारात्मक दिशा में ले जाती है।

मां अपने बच्चों के साथ गुणवत्ता संबंध स्थापित करके बाल अपराध और किशोर अपराध को बचपन से ही नहीं बढ़ने देती। अपराधिक गतिविधियों पर निगरानी रखती है। गलत व्यवहार पर नियंत्रण रखती है। बाल आचरण समस्याओं पर ध्यान देती है। शैक्षिक उपलब्धता, निर्णय लेने की शक्ति, जोखिम व्यवहार से बचने के तरीके इत्यादि में सहायता करती है।

मां अपने धर में बच्चों को अनुशासन बनाए रखने के लिए नकारात्मक दण्ड के रूप में कुछ अन्य प्रकार के दण्ड का उपयोग करती है जिसके माध्यम से बच्चों में अनुशासन लाया जा सकता है जिन्हें हम समारात्मक दण्ड के नाम से जानते हैं।

- ❒ बच्चों को उनकी पसंदीदा वस्तु से दूर करना जैसे कि बच्चे टेलीविज़न के शौकीन होते हैं। उन्हें कुछ समय के लिए टेलीविज़न से दूर रखना।
- ❒ इनको अपने समूह के बच्चों से दूर रख के।
- ❒ अगर मां अपने बच्चों को कभी-कभी नज़र अंदाज करे तो भी ये दण्डित हो सकते हैं।

उपर्युक्त माध्यमों के द्वारा नकारात्मक दण्ड को विस्थापित किया जा सकता है और बच्चों में अनुशासन लाया जा सकता है। अत: उपर्युक्त दण्डों के साथ-साथ बच्चों को दण्डित करते वक्त माताओं को निम्न बातों पर भी ध्यान देना चाहिए।

1. मां कोई ऐसा दण्ड दे जो कोई नकारात्मक दण्ड न हो जिसमें किसी प्रकार का दुर्व्यवहार शामिल न हो
2. दण्ड की अवधि में चाहे वह सकारात्मक हो उनमें विशेष अंतर होना चाहिए, जिससे बच्चे दण्ड के आदि न बन जाएं।
3. दण्ड की अवधि इतनी लंबी नहीं होनी चाहिए जिससे कि बच्चे के भीतर बदले की भावना उत्पन्न हो जाए।
4. जब दण्ड की अवधि समाप्त हो जाए तो बच्चों को अनुकूल वातावरण दिया जाये।
5. दण्ड सदैव रचनात्मक होना चाहिए। ◆

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

रंगाई की विभिन्न विधियां

✍ निशा आर्य एवं ललिता रानी
वस्त्र एवं परिधान अभिकल्पन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वस्त्रों को रंगने के लिए आज भी महिलाएं परंपरागत तरीके से रंगाई करती हैं। परंपरागत तरीके से महिलाएं विभिन्न प्रकार के घरेलू वस्त्रों को बाज़ारों में उपलब्ध रंगों द्वारा रंगाई करती हैं। विश्व में रंगाई की कला बहुत पुरानी है। मिस्र में लगभग 3500 वर्ष पूर्व के नीले रंग के कपड़े मिले हैं। मिस्र में ही मकबरों में परिरक्षित शवों को लपेटने के लिए केसरी रंग के तथा नील से रंगे हुए नीले रंग के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। ऐसा माना जाता है कि सिकंदर काला, हरा तथा पीला रंग रंगने की कला को भारत से ग्रीस लेकर गया था। पूर्वकाल में वस्त्रों को रंगने की कला की जानकारी प्राप्त करने से पहले, मनुष्य अपने शरीर को विभिन्न रंगों द्वारा सजाया करता था।

रंगाई की अवस्थाएं

वस्त्रों को रंगने की क्रिया, वस्त्र उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं में की जाती है। ये अवस्थाएं निम्न प्रकार से हैं :

अ. रेशों की रंगाई : ऊन, रूई, लिनन तथा कच्ची रेशम के तंतुओं को इन विधि से रंगा जाता है। रेशों को रंग के घोल में डालकर अच्छी तरह हिलाया जाता है। रंग चढ़ने के पश्चात् रेशों को बर्तन में से निकाल कर, दबा-दबा कर फालतू रंग निकाल कर सुखाने के लिए डाला जाता है। संश्लेषित तंतुओं को रंगने के लिए रासायनिक घोल में रंग मिला दिया जाता है इससे स्पिनरैट में से रंगदार रेशा बाहर निकलता है।

ब. लच्छियों की रंगाई : सभी प्रकार के रेशों की लच्छियों को रंगा जा सकता है। इन लच्छियों को एक डण्डे पर टांग कर रंग के बर्तन के ऊपर इस प्रकार रखते हैं कि लच्छियां रंग में डूब जाएं। इस डण्डे को लगातार घुमाया जाता है जिससे लच्छियां पूरी तरह रंग सोख लेती हैं तथा फिर इन्हें सुखा दिया जाता है। घरेलू रंगाई में लच्छियों को रंग वाले बर्तन में डालकर रंगा जाता है।

स. तैयार वस्त्रों को रंगना: तैयार वस्त्रों को दो प्रकार से रंगा जा सकता है :

क. वस्त्र का रंगना : इस प्रक्रिया में रंगने वाले वस्त्र को एक रोलर पर लपेट कर रंग के घोल के बर्तन में तब तक डाला जाता है, जब तक कपड़े पर रंग चढ़ न जाए। तैयार वस्त्रों को रंगने से रंग उतने पक्के नहीं चढ़ते, जितने कि पहली दोनों अवस्थाओं में चढ़ते हैं। ये रंग धुंधले भी पड़ जाते हैं, क्योंकि रंग वस्त्र की सतह पर ही रहता है तथा रेशों के अंदर तक प्रवेश नहीं कर पाता। इसका कारण है, कि वस्त्र की रंगाई में बुनाई तथा धागे की ऐंठन के कारण बाधा उत्पन्न होती है।

ख. क्रॉस रंगाई : इस विधि से उन वस्त्रों को रंगा जाता है, जो दो प्रकार के धागों से बने होते हैं। इसलिए इन वस्त्रों को दो बार रंगा जाता है। पहली बार एक धागे के लिए आवश्यक रंग प्रयोग किया जाता है, तथा दूसरी बार दूसरे धागे के लिए आवश्यक रंग का प्रयोग किया जाता है।

कपड़े को रंगने की विभिन्न विधियां : रंगाई की प्रक्रिया दो प्रकार से की जा सकती है :

1. साधारण रंगाई   2. अवरोधक रंगाई

1. साधारण रंगाई : साधारण रंगाई में वस्त्रों को बिना किसी अवरोधक के केवल रंगों के द्वारा ही रंगा जाता है। घरों में दरियां या खेस बनाने के लिए धागों को रंगना, दुपट्टों या ऐसे वस्त्रों को रंगना, जिनका रंग फीका पड़ गया हो, साधारण रंगाई में आता है। इसे घरेलू रंगाई भी कहते हैं।

साधारण अथवा घरेलू रंगाई का ढंग: घरेलू रंगाई करते समय निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करना चाहिए :

अ. रंगों का चुनाव : रंगों का चुनाव कपड़े के तंतुओं की प्रकृति तथा उसके प्रयोग के अनुसार करना चाहिए जैसे जान्तव तंतुओं के लिए अम्लीय रंग अच्छे होते हैं। सूती वस्त्रों के लिए गंधक रंग तथा वाट रंग अच्छे होते हैं। इन रंगों के प्रयोग के लिए निर्देश डिब्बों पर लिखे होते हैं जैसे कि उन पर लिखा होता है कि यह किस प्रकार का रंग है, किस प्रकार के वस्त्रों के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है तथा इसका घोल कैसे बनाना है इत्यादि। उन निर्देशों के अनुसार वस्त्रों को रंगना चाहिए। वनस्पति जन्य कपड़ों पर गहरा तथा पक्का रंग चढ़ाने के लिए रंगों को उबाला जाता है।

जन्तु जन्य कपड़ों पर रंग सरलता से चढ़ते हैं। अत: इन वस्त्रों को रंगने के लिए उबालना नहीं चाहिए। उबालने से इन वस्त्रों का प्राकृतिक तेल निकल जाता है तथा वस्त्र सिकुड़ कर खराब हो जाते हैं। सेल्यूलोज़ एसिटेट के लिए विशेष प्रकार के रंगों की आवश्यकता होती है। रेयॉन के वस्त्रों का सूती वस्त्रों के समान रंगों के प्रति बहुत कम आकर्षण होता है तथा उन पर रंग बहुत कम चढ़ते हैं।

ब. रंगाई वाले वस्त्र की तैयारी : अगर सिले हुए वस्त्र को रंगना हो तो निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- बटन, लेस झालर, फर, ज़िप, रिबन, डोरियां तथा सजावट का दूसरा समान उतार देना चाहिए।
- कपड़े पर लाइनिंग लगी हो तो उसे अलग कर देना चाहिए।
- कपड़े की प्लीट्स, चुन्नटें, तहें, उलेहड़ी तथा घेरे की सिलाइयां आदि भी खोल दें।
- वस्त्र को अच्छी तरह से धो दें, ताकि उसमें से मैल, स्टार्च तथा नील निकल जाए।
- यदि कपड़ा रंगदार हो तो उसे ब्लीच करके रंगें। ऐसा न करने से रंगाई के समय ठीक शेड न आने की संभावना बढ़ जाती है तथा धब्बे भी पड़ सकते हैं। कपास के तंतुओं के लिए सोडियम हाइपोक्लोराइट तथा जांतव तन्तुओं के लिए सोडियम हाइड्रोसल्फाइट का प्रयोग करना चाहिए।

स. सामग्री तथा बर्तन : रंगों के पैकेट के ऊपर लिखे निर्देशों के अनुसार सामग्री लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त रंगने के लिए एक चौड़ा तथा गहरा बर्तन, एक टब, एक छोटा प्याला, लकड़ी के दो चम्मच, रबड़ का ऐप्रन तथा दस्ताने मलमल का टुकड़ा, पानी (आवश्यकता अनुसार गर्म या ठण्डा या दोनों) नमक तथा रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है।

द. रंग को घोल की तैयारी : जिस वस्त्र को रंगना होता है, उसे थोड़ी देर के लिए फिटकरी वाले पानी में भिगोएं। इससे कपड़े पर चमकदार रंग चढ़ता है। घोल तैयार करने के लिए धातु के बर्तनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि धातु तथा रंगों में रासायनिक क्रिया हो सकती है। इसके लिए एनेमल के बर्तन ठीक रहते हैं। बर्तन बड़ा होना चाहिए, ताकि उसमें रंग का घोल तथा कपड़ा आसानी से आ जाएं। रंग का घोल तैयार करने के लिए रंग के पैकेट या डिब्बे के ऊपर दिए गये निर्देशों का पालन करें।

रंग का ठीक शेड उपलब्ध न होने पर दो या अधिक रंगों को मिलाया जाता है। रंग का एक सार घोल तैयार करने के लिए रंग के पाऊडर को मलमल की थैली में बांध कर निर्देश अनुसार ठण्डे या गर्म पानी में तब तक हिलाया जाता है जब तक सारा रंग घुल न जाए। रंगे जाने वाले वस्त्र के

अंदर वाले किसी भाग को या किसी अन्य वैसे ही वस्त्र के टुकड़े को, रंग में डुबो कर रंग का शेड चैक कर लेना चाहिए। शेड चैक करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पानी में खंगालने तथा सूखने के पश्चात् कपड़े का रंग एक शेड हल्का दिखाई देता है।

रंगने की विधि : वस्त्रों को रंगने के लिए ठण्डी या गर्म विधि का प्रयोग किया जाता है।

अ. गर्म विधि : एनेमल के किसी गहरे तथा चौड़े बर्तन में पानी उबालने के लिए रखें। यदि इसमें 1 प्रतिशत से 4 प्रतिशत तक सोडा राख मिला दें तो कपड़े पर रंग जल्दी चढ़ जाता है। कपड़े को फिटकरी के घोल में डुबो कर निकाल लें तथा निचोड़ कर फटकार लें। अब इसे रंगाई वाले घोल में डाल दें। जब तक कपड़ा रंग के घोल में रहता है इसे लकड़ी के चम्मच से उलटते-पलटते रहें ताकि रंग एकसार चढ़े। जब कपड़े पर उचित शेड चढ़ जाए तो कपड़े को लकड़ी के चम्मचों की सहायता से निकाल कर टब में खंगालने के लिए डाल दें। पक्का तथा गहरा रंग चढ़ाने के लिए सूती कपड़ों के लिए एक गैलन पानी में एक बड़ा चम्मच नमक के हिसाब से मिलाएं। ऊनी वस्त्रों के लिए एक गैलन पानी में एक चम्मच एसिटिक अम्ल अथवा दो चम्मच सिरका मिलाना चाहिए।

ब. ठण्डी विधि : रंग को गुनगुने पानी में अच्छी तरह से घोल कर, इसे सामान्य पानी में डाल दें। आवश्यकता के अनुसार इसमें नमक या सिरका मिला दें। कपड़े को रंग के घोल में 15-20 मिनट तक पड़ा रहने दें। सोडे को गरम पानी में घोल कर रंग में मिला दें। कपड़े को बीच-बीच में हिलाते रहना चाहिए, ताकि सारे वस्त्र पर एक जैसा रंग चढ़े। रंग के पैकेट पर लिखे निर्देशों को अच्छी तरह से पढ़ें।

स. खंगालना तथा सुखाना : रंगाई के पश्चात् वस्त्रों को ठण्डे पानी में तब तक खंगालते हैं, जब तक रंग निकलना बिल्कुल बंद न हो जाए। वस्त्रों को निचोड़ने के स्थान पर उन्हें दबा-दबा कर पानी निकालना चाहिए तथा उल्टा करके छाया में सूखने क लिए डालना चाहिए। बचे हुए रंग को तब तक फेंकना नहीं चाहिए जब तक वस्त्र पर ठीक शेड नहीं आ जाता।

परिसज्जा :

1. कपड़ों को थोड़ी गीली अवस्था में ही प्रैस कर लेना चाहिए। यदि कपड़ा प्रैस करने से पहले सूख जाता है, तो कपड़े पर मलमल का गीला कपड़ा बिछा कर प्रैस करनी चाहिए।
2. कपड़े को प्रैस करने वाले मेज़ को किसी पुराने कपड़े से ढक देना चाहिए, ताकि प्रैस करते हुए अगर रंग निकले तो नया कपड़ा या बोर्ड खराब न हो।
3. प्रैस तेज़ गर्म नहीं होनी चाहिए। इससे कपड़े का रंग खराब होने का डर रहता है।
4. कपड़े को उल्टी साइड से प्रैस करना चाहिए।

रंगाई में सामान्य दोष : प्राय: रंगाई में निम्नलिखित दोष देखे जा सकते हैं:

अ. धब्बे तथा धारियां : धब्बे तथा धारियां ऐसे रंगों से पड़ते हैं जो पूरी तरह से घुलनशील नहीं होते। इसके अतिरिक्त रंग में मिट्टी के धब्बे, वस्त्र पर या बर्तन में ग्रीज़ के निशान होना, वस्त्र पर पहले से कोई रंग चढ़ा होना, जो अब हल्का हो गया हो या रंगाई वाले बर्तन का वस्त्र के अनुपात में छोटा होना आदि कारणों से भी धब्बे तथा धारियां पड़ जाती हैं।

ब. असमान रंगाई : असमान रंगाई के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

1. कपड़े पर अगर पहले से कोई रंग चढ़ा हो और हम उसे ब्लीच करके पुन: किसी रंग में रंगना चाहते हैं किंतु पहला रंग पूरी तरह से ब्लीच न हो पाए तो उस कपड़े पर रंगाई असमान दिखाई देती है।
2. रंगाई के दौरान कपड़े को अच्छी तरह से न हिलाने से कपड़े में रंग समान रूप से प्रवेश नहीं कर पाता।
3. रंग या घोल की मात्रा आवश्यकता से कम होना तथा वस्त्र का उसमें पूरी तरह से न डूबना।
4. रंगाई का बर्तन आवश्यकता से छोटा होना।
5. कपड़ा पूरी तरह से गीला न होना।
6. रंगाई से पहले वस्त्र की प्लीट्स, चुन्नटें तथा तहें आदि पूरी तरह से न खोलना।
7. खंगालते समय या खंगालने के पश्चात् कपड़े को कस कर निचोड़ना।

घरेलू रंगाई करते समय सावधानियां :

अ. रंग को हमेशा थोड़े पानी में घोलें या मलमल की पोटली बनाएं तथा इस बात का ध्यान रखें कि रंग अच्छी तरह से घुल जाए। यदि रंग के अघुलनशील कण घोल में रह जाएंगे तो कपड़े पर धब्बे व धारियां पड़ सकती हैं।

ब. रंगाई के समय कपड़े को बीच-बीच में हिलाते रहें, ताकि रंगाई एकसार हो सके।

स. रंगाई वाले घोल में जब भी नमक, कोई रासायनिक पदार्थ या तेज़ाब डालना हो तो रंगाई वाले कपड़े को बाहर निकाल कर डालें।

द. रंगाई वाला कपड़ा साफ-सुथरा होना चाहिए। मैल, चिकनाई, चुन्नटों, तहों, प्लेटों आदि से कपड़ों की रंगाई ठीक नहीं होती तथा उन पर धब्बे व धारियां पड़ जाती हैं।

2. अवरोधक रंगाई : अवरोधक रंगाई सारे कपड़े पर नहीं की जाती। इस प्रकार की रंगाई से अभिप्राय उस रंगाई से है, जिसमें कपड़ों को रंगने के लिए उन्हें कुछ स्थानों पर बांध दिया जाता है या कोई अवरोधक पदार्थ लगा दिया जाता है। इससे वस्त्र के उस स्थान पर रंग नहीं चढ़ता। कपड़ा सूखने के पश्चात्, जिस स्थान पर अवरोधक पदार्थ लगाया गया होता है, उस स्थान पर डिज़ाइन बन जाता है। यह रंगाई दो प्रकार की होती है :

अ. बंधेज की रंगाई ब. बाटिक की रंगाई

अ. बंधेज की रंगाई : बंधेज अथवा कपड़ों को बांधकर रंगने की कला राजस्थान तथा गुजरात में बहुत विकसित है। इसमें कपड़े को नमूने के अनुसार कई स्थानों से बांध दिया जाता है। फिर कपड़े की रंगाई की जाती है। जिन-जिन स्थानों पर धागा बंधा होता है या गांठ लगी होती है, उन-उन स्थानों पर रंग नहीं चढ़ता। इस रंगाई में कई प्रकार के डिज़ाइन बनाए जाते हैं, जैसे कि बूंदी, लहरिया, जानवर, पक्षी, फूल, चौरस, तिरछे, मनुष्यों की आकृतियां, पेड़-पौधे आदि। यह रंगाई मुख्यत: पतले कपड़ों जैसे कैम्ब्रिक, सिल्क, मलमल, शिफोन आदि पर की जाती है। कपड़े को रंगने से पहले अच्छी तरह धो लेना चाहिए, ताकि उसकी मांड निकल जाए। कपड़े को बांधने के कई ढंग हैं, जैसे कि :

❒ कपड़े को नमूने के अनुसार इकहरा दोहरा या चार तहें करके बांधना।
❒ कपड़े की तहों में किसी दाल, अनाज या चने का दाना या दाने डाल कर उसके इर्द-गिर्द धागा बांधना।
❒ बारीक डिज़ाइन बनाने के लिए कपड़े पर कच्चा टांका करके धागा खींच लेना। इससे कपड़ा इकट्ठा हो जाता है तथा जिस स्थान से धागा खींचा जाता है, वहां रंग नहीं चढ़ता।
❒ कपड़े में सिक्के, पत्थर मोती आदि भी बांधे जा सकते हैं।
❒ कपड़े पर इलास्टिक बैंड भी लगाए जा सकते हैं।

जब सारा वस्त्र बांधा जा चुका हो तब उसकी रंगाई करते हैं। रंग के पैकेट पर दिए गए रंगाई के निर्देशों को अच्छी तरह से पढ़ लेना चाहिए। रंगाई के पश्चात् धागों को खोल देते हैं। अगर दो या अधिक रंगों से वस्त्र रंगना हो, तो प्रत्येक रंगाई के पश्चात् डिज़ाइन के अनुसार कपड़े को फिर से बांधा जाता है। सबसे पहले सबसे हल्का रंग, फिर मध्यम तथा फिर गहरा रंग किया जाता है। जब कपड़ा अच्छी तरह से सूख जाता है, तो धागे खोल देते हैं। गीले कपड़े के धागे खोलने से रंग एक-दूसरे के ऊपर चढ़ जाते हैं। अधिक समय तथा मेहनत लगती है। यह रंगाई महंगी भी पड़ती है।

ब. बाटिक की रंगाई : इस रंगाई में वस्त्र पर अवरोधक पदार्थ लगाकर वस्त्र को रंगा जाता है। अवरोधक लगे स्थानों पर रंग नहीं चढ़ता। बाटिक मुख्यत: पतले कपड़ों पर की जाती है, जैसे कि सूती कपड़ा, लिनन, सिल्क, आरकंड़ी आदि। इसके लिए नायलोन मिश्रित तथा संश्लेषित वस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि गर्म मोम से ये वस्त्र पिघल जाते हैं। बाटिक के लिए सफेद वस्त्र का प्रयोग किया जाना चाहिए। सफेद वस्त्र पर सभी रंग आसानी से चढ़ जाते हैं। जिस कपड़े पर रंगाई करनी हो, उस कपड़े को अच्छी तरह से धोकर उसकी मांड निकाल देनी चाहिए। फिर उस कपड़े को अच्छी तरह से रंगाई करके उसके ऊपर डिज़ाइन ट्रेस करना चाहिए। डिज़ाइन बहुत बारीक नहीं होना चाहिए। बहुत बारीक नमूने पर मोम लगाना मुश्किल होता है। पैराफिन मोम तथा मधुमक्खियों की मोम का 4 : 1 भाग अवरोधक पदार्थ के रूप में प्रयोग किया जाता है। धारियां अधिक डालनी हों तो यह अनुपात 6 : 1 भी लिया जा सकता है।

मोम को किसी बर्तन में डालकर हल्की आग पर गर्म किया जाता है। मोम के बर्तन को तवे या किसी अन्य वस्तु पर रखकर गर्म करना चाहिए। मोम को आग पर सीधा गर्म करने से मोम आग पकड़ सकती है। कपड़े को किसी कढ़ाई वाले फ्रेम में लगाकर या किसी सख्त सतह पर रखकर पेंटिंग ब्रुश की सहायता से पिघती हुई मोम, कपड़े के उन हिस्सों पर लगाई जाती है, जिन पर रंग नहीं करना होता। मोम कपड़े पर रंग चढ़ने नहीं देती। रंगाई से पूर्व पूरे कपड़े को ठण्डे पानी में भिगो दिया जाता है। ताकि मोम जमकर सख्त हो जाए।

बाटिक की रंगाई के लिए विशेष विकसित रंगों का प्रयोग किया जाता है। यह रंगाई ठण्डे पानी में की जाती है क्योंकि गर्म पानी में मोम पिघल जाएगा। कपड़े को पहले बेस में तथा फिर नमक के घोल में डाला जाता है। नमक के घोल में डालते ही वस्त्र पर रंग दिखने लगता है। कपड़े को हल्के से निचोड़ लिया जाता है, ताकि फालतू रंग निकल जाए। एक से अधिक रंगों का प्रयोग करना हो तो पहले हल्का रंग, फिर मध्यम रंग तथा आखिर में सबसे गहरे रंग में रंगना चाहिए। प्रत्येक रंगाई के पश्चात् जहां रंग बांधना होता है, वहां फिर से मोम लगा दी जाती है। रंगाई के पश्चात् वस्त्र को ठण्डे पानी से अच्छी तरह खंगाल कर फालतू रंग निकाल देते हैं तथा छाया में सुखा देते हैं।

कपड़े पर से मोम उतारने के लिए मोम को चाकू या किसी अन्य ऐसी ही वस्तु से खुरचा जाता है। बाद में कपड़ों को पेट्रोल से धोकर सारी मोम उतार दी जाती है तथा वस्त्र को छाया में सुखाया जाता है। अंत में अखबार की दो तहों में कपड़े को रख कर ऊपर से गर्म इस्त्री की जाती है। इस तरह बची हुई मोम भी अखबार के द्वारा चूस ली जाती है तथा कपड़ा बिल्कुल मोम रहित हो जाता है। यह रंगाई भी आम रंगाई की अपेक्षा अधिक महंगी है, तथा इसमें समय व मेहनत भी अधिक लगती है। ◆

पॉलीहाऊस में सूत्रकृमि - समस्या एवं समाधान

✍ आदित्य[1], जे. एन. भाटिया एवं देवेन्द्र चहल[2]
कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरुक्षेत्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्तमान समय में संरक्षित खेती एक ऐसी उच्च तकनीकी प्रणाली है जिसके माध्यम से किसान अपनी आय को अपेक्षाकृत आसानी से बढ़ा सकते हैं। इस खेती की अपेक्षाओं के विपरीत व संरक्षण के बावजूद पॉलीहाउस में चूसक नाशकों, मृदा जनित रोगों व सूत्रकृमियों की बहुत सी समस्याएं हैं। मुख्य कारणों में पॉलीहाऊस की जगह का गलत चुनाव, कीट जाली का प्रयोग न करना, मिट्टी की जांच व उपचार न करना, जानकारी, प्रशिक्षण, स्वस्थ पौध व प्रशिक्षित कर्मियों के अतिरिक्त, रसायनों, जैवनाशकों आदि का अभाव तथा आई.पी.एम. जैसे घटकों की अवमानना या अभाव के कारण इस पद्धति से किसान विमुख होते जा रहे हैं। इन्हीं समस्याओं में से एक अति जटिल समस्या सूत्रकृमियों से होने वाली हानि एक प्रकोप के रूप मे उभरी है जिसको नि:संदेह अधिकतर किसान सुलझाने में विफल रहे हैं। प्रस्तुत लेख में सूत्रकृमियों की पहचान, लक्षण तथा समग्र प्रबन्धन के बारे में चर्चा की गई है जो पॉलीहाऊस उत्पादकों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

सूत्रकृमि क्या है?

यह एक प्रकार के सूक्ष्मदर्शी गोलाकार जन्तु हैं जो कि वास्तव में सूक्ष्मजीव नहीं है क्योंकि इनके शरीर में अस्थि पंजर, रक्त वहन तंत्र, श्वसन प्रणाली व उपांगों के अलावा उच्चवर्गीय जन्तुओं में पाने वाले सभी अंग विद्यमान होते हैं। यह जीव हवा को छोड़कर लगभग हर जगह जैसे कि समुद्रों, नदियों, तालाबों, खेती व बंजर मिट्टी के अलावा सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। एक मुट्ठी भर मिट्टी में हज़ारों नहीं तो सैंकड़ों सूत्रकृमि पाये जाते हैं।

सूत्रकृमियों की विविधता : मिट्टी में रहने वाले सूत्रकृमियों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है :

1. मुक्त रहने वाले सूत्रकृमि भक्षक : मुक्त सूत्रकृमि सभी प्रकार की मिट्टी में पाये जाते हैं। कार्बनिक मिट्टी में विशेषकर प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जबकि पौध परजीवी सूत्रकृमि हरियाली युक्त क्षेत्रों में चाहे वह चरागाही भूमि हो, खेती की भूमि हो अथवा सामान्य हरियाली क्षेत्र हो, मात्र उनकी किस्में ही भिन्न हो सकती हैं।

2. पौध परजीवी सूत्रकृमि : पौध परजीवी सूत्रकृमि धागेनुमा, गोलाकार व उपांगों रहित जन्तु होते हैं जो आकार में 0.5-2.0 मि.मी. लम्बे होते हैं। यह धरती पर सभी प्रकार के पौधे जिसमें फसलें, जंगली पौधे, घास या पेड़ शामिल हो को खाते हैं। सभी प्रकार की जलवायु में पनपते हैं जहां वानस्पतिक जीवन होता है। पौध परजीवी सूत्रकृमियों की 4-5 प्रजातियां किसी भी पौधे से संबंधित रहती हैं।

- ❑ **बाह्य परजीवी :** जो पौधे के अन्दर घुसे बिना बाहर मिट्टी में रहकर ही जड़ों व अन्य पौधों से रस चूसकर भोजन प्राप्त करते हैं।
- ❑ **अर्ध-अंत: परजीवी :** पौधों के अन्दर आधा घुसकर भोजन प्राप्त करते हैं।
- ❑ **अंत: परजीवी :** पौधों के अन्दर पूरी तरह से घुस कर भोजन प्राप्त

[1]स्नातकोत्तर छात्र (पादप रोग)
[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, कैथल

करते हैं।

गौरतलब है कि पॉलीहाऊस की फसलों की जड़ें लगभग सभी प्रकार के सूत्रकृमियों से संक्रमित होती हैं। बाह्य परजीवी सूत्रकृमि सदैव परन्तु निम्नस्तर की हानि ही पहुंचाते हैं जबकि अचल अंत: पौध परजीवी फसल को सबसे अधिक नुकसान पहुंचाते हैं।

हानि के लक्षण : सूत्रकृमि मूलत: मिट्टी में रहते हैं तथा जड़ एवं मिट्टी मे पौधे के अन्य भागों जैसे कन्द, गांठों, ट्यूबर आदि को खाकर नुकसान पहुंचाते हैं। भूमि में रहकर पौधों की नई व कमज़ोर जड़ों को नष्ट कर देते हैं जबकि पुरानी व मोटी जड़ों को संक्रमित करके भूमि जनित रोग व कीड़ों को फैलाने में सहायक होते हैं। प्रकोप के कारण मिट्टी से जल एवं खाद्य पदार्थ का अवशोषण व संवहन रुक जाता है जिसकी वजह से पौधे नाटे, पैबंदी बढ़वार, पौधों का पीलापन, मुरझाना, फुटाव में कमी,पत्तियों का गिरना इत्यादि होते हैं जबकि मिट्टी के अन्दर फसल की जड़ों में मौजूद गांठों व फुलावपन सूत्रकृमियों द्वारा हानि के प्रत्यक्ष सबूत हैं।

सूत्रकृमियों द्वारा जड़ों को होने वाली हानि अक्सर धीमी गति से होती है जो कि फफूंद व जीवाणु रोगों द्वारा होने वाली महामारी का रूप तो नहीं लेती बल्कि पोषक तत्वों की कमी से होने वाली ग्रसित हानि जैसी दिखाई देती है। यही कारण है कि हम इनके लक्षणों को अनदेखा कर देते हैं।

सूत्रकृमियों द्वारा विभिन्न फसलों के नुकसान का आंकलन :

क्र.सं.	फसल	नुकसान (%)
1.	बागवानी फसल	14.0
2.	फलों में	10 – 69
3.	सब्जियों में	13 – 99
4.	पुष्पवर्गीय फसलों में	13.8 – 70
5.	पॉली हाऊस (टमाटर व खीरा)	28–29

पॉली हाऊस में सूत्रकृमि बढ़ने व फैलाव के कारण : मुख्यत: पॉली हाऊस में आर्द्रता, तापमान का अनूकूल होना व पोषण स्नेही फसलों का लगातर उगाना जिनमें टमाटर, खीरा आदि मुख्य हैं। पॉलीहाऊस में सूत्रकृमि रोगग्रस्त मिट्टी, ग्रसित पौध या बीज, प्रयोग में आने वाले यंत्र, कर्मियों आदि के जूतों व कृषि मशीनरी के द्वारा भी फैलते हैं।

सूत्रकृमियों का प्रबंधन कैसे करें ?

- पॉली हाऊस/नेटहाऊस बनाने से पहले मिट्टी में सूत्रकृमियों की आवश्यक जांच अवश्य करानी चाहिए।
- पॉली हाऊस में नर्सरी उत्पादन के लिए बीजों या तैयार नर्सरी को हमेशा भरोसेमंद व विश्वसनीय स्रोत से ही प्राप्त करना चाहिए। नर्सरी उत्पादन में हर पहलू से सावधानी बरतनी चाहिए ताकि सूत्रकृमि मुक्त स्वस्थ पौध प्राप्त हो।
- पॉलीहाऊस में फसल की बिजाई व रोपाई से लेकर सूत्रकृमियों की उपस्थिति की समय–समय पर निगरानी करते रहना चाहिए।
- फसल उत्पादन के बाद पॉली हाऊस में से पौधों की सभी जड़ों को निकालकर जला देना चाहिए। ऐसा करने मात्र ही से सूत्र कृमियों की लगभग 80–90 प्रतिशत संख्या कम की जा सकती है।
- प्रत्येक वर्ष गर्मी के शिखर के समय (मई–जून के माह में) जब पिछली फसल का कार्यकाल पूरा हो चुका हो तथा सभी पौधों की जड़ों को निकाल कर जलाया जा चुका हो। तब पॉली हाऊस में सिंचाई करके जुताई कर देनी चाहिए। इसके उपरान्त पूरे पॉली हाऊस की मिट्टी को 25 माइक्रान पॉलीथीन की शीट से ढक देना चाहिए तथा पॉली हाऊस को 2–3 सप्ताह के लिए बंद कर देना चाहिए। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे यदि ढंग से किया जाए तो अगली फसल को सूत्रकृमियों के प्रकोप से लगभग पूरा बचाया जा सकता है।
- खादों के साथ जैव कारकों व नीम की खली का प्रयोग भी पॉलीहाऊस में सत्रकृमियों की संख्या को नियंत्रण करने में सहायक है। इसके लिए गोबर या केंचुओं की खाद में ट्रायकोडर्मा स्पीसीज या स्यूडोमोनास फ्लोरेसैंस जैसे जीव कारकों को खाद में लगभग 2 किलोग्राम या 2 लीटर प्रति टन की दर से मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।
- रोपण बैंड में 20 ग्राम प्रति वर्ग मी. की दर से ट्राइकोडर्मा विरिडी को नीम की खली या गोबर की खाद या केंचुए की खाद के साथ 100 ग्राम प्रतिवर्ग मीटर की दर से मिलाने पर भी सूत्रकृमि के नियंत्रण में फायदा मिलता है।
- पॉलीहाऊस में एक ही फसल को बार–बार नहीं लगाना चाहिए क्योंकि देखने में आया है कि किसान भाई लगातार टमाटर व खीरे की फसल ही उगाते हैं जो सूत्रकृमियों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं। अत: इनके बीच में शिमला मिर्च व चैरी टमाटर की फसल लगानी चाहिए जो सूत्रकृमियों के प्रति ज़्यादा संवेदनशील नहीं होती।
- हालांकि रासायनिक सूत्रकृमिनाशक कार्बोफ्यूरान एक दानेदार कीटनाशक है जिसको 1–2 कि.ग्रा. प्रभावकारी घटक या 33–66 कि.ग्रा./है. की दर से बिजाई अथवा रोपण से पहले मिट्टी में मिलाया जा सकता है। परन्तु इसकी सिफारिश उन्हीं हालातों में करनी चाहिए जब सूत्रकृमियों की संख्या बहुत अधिक हो।
- पॉलीहाऊस के अन्दर व बाहर सफाई का विशेष रूप से ध्यान रखें तथा गैप मानकों का पालन अवश्य करें।
- सूत्रकृमि रहित नर्सरी का उत्पादन मिट्टी रहित माध्यम में उगाकर ही प्रयोग करें एवं उचित घुलनशील उर्वरकों व पानी का पूर्ण निर्जलीकरण सुनिश्चित करें। ◆

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई–मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

Soil Solarization: An Eco-friendly Approach to Management of Plant-parasitic Nematodes

✍ **Vinod Kumar, Anil Kumar and Sardul Singh Mann**
Department of Nematology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

The changes in agricultural situations have tremendous effects on the emergence of new nematode problems in India. Nematodes belonging to the phylum nematoda or nemata are the most abundant multicellular animal that inhabit in almost all the environments. Nematodes can parasitize plants, animals, insects, etc. Plant parasitic nematodes are capable of causing disease on many economically important crops grown in India and attained the status of pests for substantial reduction of crop yield but root-knot nematodes is the most damaging one. The most predominant species of root-knot nematodes are *Meloidogyne incognita, M. javanica* and *M. graminicola*.

There is hardly any crop which is not attacked by the root-knot nematodes. All the species of root-knot nematodes produce a characteristic 'root-gall' or 'root-knot symptom' which could be easily recognized by the naked eye. The expression of damage in crop plants due to nematodes often goes unnoticed for want of diagnostic symptoms. Above ground symptoms are non-specific in nature. Infected plants exhibit symptoms of general mineral deficiency, yellowing, stunting, wilting during hotter part of the day, chlorosis and premature shedding of leaves resulting in low yield. Besides inflicting direct losses in crop yields, plant-parasitic nematodes also play an important role in disease complexes involving other pathogens. The lack of awareness among the farmers about the nematode problems and non-availability of suitable package of practices to extension workers for managing nematodes are the major hindrance for protecting the crops.

Effective control of nematodes and soil-borne plant pathogens is a serious challenge for farmers and home gardeners. For the management of nematode problems preventive measures can be taken up to keep the population of nematodes below economic threshold level. To manage nematode menace, use of organic amendments, crop rotation and cultivation of resistant crop varieties, application of nematicides, etc. are widely adopted at present in different crops. Chemical approach of nematode management is no doubt effective, but high doses of nematicides required for managing nematodes are neither economical nor environmentally safe. As a result, there has been an increased emphasis on reduced-pesticide or non-pesticidal control methods. Soil solarization is a simple, safe, and effective alternative to the toxic, costly soil pesticides and the lengthy crop rotations now needed to control many damaging soil-borne pests including plant parasitic nematodes.

How to do soil solarization

Soil solarization or “solar heating” is a non-chemical disinfestation practice that may serve as a component of a sustainable integrated nematode management programme. Soil solarization is based on the exploitation the solar energy for heating wet soil mulched with transparent polythene sheet to 40–55ºC in the upper soil layer. However, it is consistently effective only where summers are predictably sunny and warm. Thermal killing is the major factor involved in the nematode management process, but chemical and biological mechanisms are also involved. It is a method of pasteurization, can effectively suppress most species of nematode.

Soil solarization by 2-3 deep summer ploughings in the month of May-June at 15 days interval followed by light irrigation and covering of soil with 25 micron transparent polythene sheet on the soil surface in such a way that it should remain air tight. Keep film in this way for 30 days and protect it from the damage by dogs, animals and men. By keeping film in this way, soil gets heated up due to conversion of solar radiation into thermal radiation. Radiant heat from the sun is the lethal agent in this process, in which a clear polyethylene mulch or tarp is used to trap solar heat in the soil. As a result, water droplet could be seen on the inner side of film. After 30 days, remove film carefully and preserve or else use it in a similar war for another nursery area/field. If handled with proper care, same film can be reused 2-3 times.

Principles of soil solarization

Most of the plant parasitic nematodes can't survive at soil temperature above 40°C. During the solarization, the temperature will rise beyond 40°C. The basic principle of soil solarization is to elevate the temperature in a moist soil to a lethal level that directly affects the viability of certain organisms. The heating process also induces other environmental and biological changes in the soil that indirectly affect soil-borne pests including plant parasitic nematodes.

Soil solarization under polyhouse conditions

Soil solarization by 2-3 deep summer ploughings in the month of May-June at 15 days interval followed by light irrigation and covering of soil with 25 micron transparent polythene sheet for 30 days during June-July in polyhouses. ◆

Green Manuring and their Significance in Agriculture

✍ **Kuldeep Singh, Manjeet and Vikas Kumar**
Department of Nematology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Green manure crops will offer enormous benefits to soil and future crops. It is also known as "fertility building" cropping. With intensive cultivation of cereals crops like rice and wheat leads to declining groundwater table and soil health degradation. Although the farmers also rely on use of chemical fertilizers to meet the nutrients' demands of the crop which in turns causes the adverse effect on crop productivity, soil health and off-farm pollution. Green manuring is a cheap alternative to the use of fertilizer N. This process also makes a positive contribution to the maintenance of soil organic matter at a satisfactory level and meets requirements of succeeding crop. A timely application of organic matter is essential to replenish the loss of humus, which is necessary for keeping the soil health in good condition by enhancing the supply of nitrogen and promoting the growth of micro-organisms. Legume effect has been successfully utilized in green manuring and green undecomposed material used as manure is called green manure. It is obtained in two ways: by growing green manure crops or by collecting green leaf (along with twigs) from plants grown in wastelands, field bunds and forest. Green manuring is growing in the field plants usually belonging to leguminous family and incorporating into the soil after sufficient growth. The plants that are grown for green manure known as green manure crops. The most important green manure crops are sunnhemp, dhaincha, pillipesara, clusterbeans and *Sesbania rostrata*.

Green manuring

Green manuring is the practice of planting crops that will be turn into the soil with the purpose to increase organic matter, replenish nutrients and improving soil fertility and productivity. It improves the soil structure, water holding capacity and microbial population of soil by the addition of humus or organic matter. It is mainly of two types:

***In situ* green manuring**

Any crop or plant that grows are ploughed within same field is called *in situ* green manuring. e.g.: sesbania, sunhemp, cowpea, green gram, mungbean, black gram, etc.

Green leaf manuring

It consists of gathering green biomass (tender leaves and twigs) from nearby location (bunds, field boundaries) and adding it to the soil. Different tree leaves and twigs can be used as the manuring material in field. E.g.: neem, glyricidia, karanjl, *Leucaena leucocephala, Cassia auriculata, Cassia tora, Calotropis*, etc.

The best method for more positive response is to turn plants maximum 15 cm or approximately 6 inches deep. Soil microbes are the most active in this upper soil layer beneath the surface and will speed up the process of decomposition. The most commonly use green manuring is dhaincha (*Sesbania aculeata*) though the cultivation of sun-hemp and guar is also valuable. Leguminous crops should be preferred as a green manure crop since it adds a lot of nitrogen into soil by atmospheric nitrogen fixation. *Rhizobium* has ability to fix nitrogen in association with leguminous plants which results in meeting the nitrogen demand of the plant. The incorporation leguminous crops producing 8 to 25 tonnes of green matter per ha will add up about 60 to 90 kg of nitrogen/ha and *Rhizobium* inoculation ensures adequate N supply for legumes (cowpea, green gram, black gram, pea, chickpea, groundnut, soybean, berseem, subabul) in place of N fertilizer and observed that *Rhizobium* can fix 50-300 kg N/ha. Higher dose of inoculums mixed into peat granules trickled into soil as the seeds are planted is an alternative technique to encourage nodulation.

Desirable characteristics of green manuring crops

- It must have deep rooting system, facilitating nutrient mining from sub-surface soil.
- Should have high capacity to fix atmospheric nitrogen.
- It should have low water and nutrient requirement.
- Short duration, fast growing, high nutrient accumulation ability.
- Tolerance to shade, flood, drought and adverse temperatures.
- Wide ecological adaptability.
- Efficiency in use of water.
- Photoperiod insensitivity.
- High seed production, high seed viability.
- Ability to cross inoculate or responsive to inoculation.
- High N sinks in underground plant parts.
- The biomass should have low fibrous material to facilitate quick decomposition.
- Should be resistant to pest and disease.

Commonly used crops for green manuring in our country are sunhemp (*Crotolaraia juncea*), dhaincha (*Sesbania aculeate*), senji (*Melilotus parviflora*), berseem (*Trifolium alexandrinum*), etc. Sunhemp is dominant among green manure crops

and is well suited in almost all parts of the country; it also fits in well with the sugarcane, potato, garden crops and the second season paddy in southern India and with irrigated wheat in the north. Dhaincha as a green manure crop does well in the waterlogged and alkaline soils.

Key facts about green manuring

- Which green manure crop should be grown (best suited to the soil and climatic condition).
- When should be grown (time of sowing).
- When to fertilize (if any).
- At what stage it should be buried (time/stage to turned into soil).
- What should be the time lag between the burying of the green manure crop and the sowing of the next crop (to allow decomposition).
- Do not sow a green manure crop from the same family as the main crop. The key is to plant species that are not related, because plants from the same family tend to use the same nutrients and are likely to host the same pests and diseases.
- Allow soil rest for 20 days after tilling to let the organic material decompose properly. This will ensure the best conditions for sowing of the following crop.

Sowing and fertilization of green manure crop

The sowing of green manure crop should be sown in May to June and ploughed down in July. Wheat fields in the north India can be green manured with sunhemp, dhaincha, cowpea, green gram, black gram, etc. Generally a higher seed rate is recommended for green manuring. Phosphatic fertilizers should be applied to green manures crop by broadcast, because it improves the atmospheric nitrogen fixation and the availability of phosphorus to the succeeding crop as compared to phosphorus applied to succeeding crop.

Incorporation of green manure crops

Green manure crop should be incorporated into soil at proper age of crop to get more benefit. It should be turned into soil at 7-8 weeks after sowing at flowering stage. Dhaincha and sunhemp is fast growing crop which attain maximum growth after 8 weeks after sowing, while crop flower around 8-10 weeks after sowing. An 8 weeks old green manure crop is succulent enough to be turned into soil for best response under rice. Various reports conclude that a green manure crop should be turned under at 7 to 8 week age, which coincides with flowering and maximum growth stage for most of the green manure crops it should be supplements the chemical fertilizers and restores soil fertility. Therefore, it is an eco-friendly low cost technology to conserve the natural resources besides maintaining environmental quality in a sustainable manner. If the green manure crop is succulent, then paddy transplanting can be done immediately after turning over of the green manure crop. But when dhaincha becomes woody (12 weeks), it is necessary to bury it about 6 to 8 weeks first before transplanting paddy for its proper decomposition.

Advantages of green manuring

The purpose of a green manure crop varies depending on each situation but some of the benefits they offer are:

- They absorb nutrient from the deeper soil layers and leave them in the surface soil.
- Green material on decomposition also produces certain organic acids which enhances the availability of certain plant nutrients like phosphorus, calcium, potassium, magnesium and iron.
- The green manuring crop absorbs nutrients from the soil and protects them against leaching losses.
- It improves the soil structure, moisture holding capacity and infiltration of water, thus decreasing the runoff and erosion.
- Green manuring with leguminous plants, like sunhemp, dhaincha, barseem, etc fix atmospheric nitrogen to the soil that becomes available to the succeeding crop.
- Increases organic matter and soil humus.
- Increases nitrogen fixation.
- Protects the soil surface from soil erosion.
- Maintains soil temperature.
- Maintains or improves soil structure.
- Reduces susceptibility to leaching.
- Access to unavailable nutrients from lower soil profile.
- Provides readily available nutrients to the next crop.

Some disadvantages of green manuring

Some disadvantages are also associated with green manuring mentioned as under:

- Under rainfed conditions, green manuring does not provide satisfactory response due to lack of soil sufficient soil moisture. Proper reduce even resists decomposition of the green plant material that causes low germination of the succeeding crop.
- A satisfactory stand and growth of the green manure crops can not be produced, if sufficient rainfall is not available.
- Green manure crops may also harbor some of the insects, pests and nematodes which could harm the succeeding crop. ◆

Integrated Disease Management in Cotton

✍ N. K. Yadav, Sandeep Kumar and Navish Kumar Kamboj
Department of Nematology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Cotton is an important commercial crop grown in India generating huge economic resources and employment potential. India is the only cotton growing country in the world which grows all the four commercially cultivated *Gossypium* species, namely, *G. arboretum, G. hisutum, G. herbacium and G. barbadense*. The types and relative importance of diseases vary considerably from one area to another depending upon the species, the environment, cultural practices and availability of the alternate hosts of the pathogens.

Disease control practices were designed to reduce pathogen inoculums or restrict development of pathogen in host tissue. This reduction is best accomplished through integration of number of approaches. The most economical means of controlling diseases was often through modification of cultural practices. Sometimes this was the only approach needed, but if inadequate, it may be supplemented by using resistant cultivars. Chemical control was normally used only as a last resort when other controls were inadequate. Chemical control is generally the most expensive and its use must be weighed against the cost of disease losses. In general, seed treatment is comparatively easy, cheap, safe and reliable method of plant protection.

A. Stage: Pre-sowing

Disease : Soil borne pathogen, Root rot, CLCuD

IDM practices: Deep ploughing to expose the soil borne pathogens for 7-10 days, removable of alternate hosts of CLCuD during Jan. to April, adopt crop rotation for soil borne diseases, avoid mono-cropping, avoid cultivation of cotton in severely affected root rot/Fusarium wilt/seedling diseases, after deep ploughing, add trash or bhusa in severely affected patches of root rot and burn it slowly to have long lasting steam affected to kill the sclerotia of the fungus, remove and destroy crop residues, stubbles and ratoon cotton, add FYM, BGS, SD amendments, avoid sowing of *bhindi* from February–April be avoided to check the built up of CLCuD and white fly, avoid preparation of field for sowing in severely affected root rot fields, avoid irrigation from soil borne infected (root rot) fields to healthy fields, proper level of the field should be maintained to avoid water logging, ornamental plants like *gulKhera*, chin-rose, hollyhock should be avoided.

B. Stage: Sowing

Disease : Soil and seed borne diseases, root rot CLCuD, Fusarium wilt, bacterial blight, boll rot

IDM practices : Select tolerant/resistant cultivars, use certified seeds, avoid sowing of undescript cultivars, sowing dates should be adjusted, inter-cropping with moth, Avoid staggered sowing, Adopt judicious use of fertilizers and water management, synchronized and timely sowing of short duration varieties, sow the seed at proper depth and moisture, avoid cultivation of American cotton varieties in and around citrus orchards for CLCuD, avoid cultivation of susceptible cotton varieties in hot spot areas of CLCuD, acid delinting of seed to remove external seed borne pathogens, use 10 kg/acre seed rated in hot spot areas of CLCuD, Clean cultivation, cultivation of American cotton varieties in severely affected fusarium wilt areas, seed treatment with Streptocycline+Emisan, dry seed treatment with Carbendazim in root rot affected fields, soil application of antagonistic agents like Trichoderma in root rot affected area, Cultivation of *desi* cotton (G. arboretum) in hot spot areas of CLCuD, seed coating with antagonistic agents.

C. Stage: Vegetative growth stage (20-40 DAS)

Diseases : Soil and seed borne diseases, CLCuD, bacterial blight.

IDM practices: Removal and destruction of diseased plants (CLCuD), adopt proper spacing by thinning, maintain weed free crop, monitor the disease incidence every week, Making *bandh* around the infected patches of root rot before rains/irrigation, spot applications (soil drenching) with carbedazim at initial stage of root rot appearance.

D. Stage: Early fruiting stage (40-60DAS)

Diseases: Root rot/Fusarium wilt, CLCuD, foliar disease

IDM practices: Removal and destruction of affected plants, monitor the disease incidence every week, maintain weed free crop, avoid excessive use of nitrogenous fertilizers, adopt judicious use of irrigation to check root rot spread along with water, spot application with Carbendazim in root rot affected patches, spray the crop with a mixture of strptocycline and copper oxy-chloride to check the spread of foliar diseases, spray the crop with systemic insecticides/neem for the control of CLCuD vector, do not use the same pesticide every time, spot application with bio-agents.

E. Stage: Peak flowering and fruiting stage (60-80 DAS)

Disease : Root rot, Fusarium wilt, CLCuD, foliar diseases, boll rot.

IDM practices: Remove and destroy the diseased plants, spot application of carbendazim/bio-agents of check root rot, maintain weed free crop, monitor the crop for incidence every week, Avoid excessive use of nitrogenous fertilizers, supplement the nitrogen with foliar application of urea in sandy area, spray the crop with a mixture of streptocycline+ copper oxy-chloride to check the foliar diseases, spray the crop with neem products to check whitefly.

F. Stage: Boll development stage (80-100DAS)

Disease : Foliar diseases, CLCuD, boll rot.

IDM practices: Spray the crop with a mixture of streptocycline + copper oxy-chloride to check foliar diseases, monitor the crop, add the recommended insecticides for bollworm control, streptocycline/ copper oxy-chloride/ carbendazim to check boll rot complex, spray the crop with triazophos/acephate to control whitefly, avoid use of synthetic pyrethroids, clipping of the CLCuD affected parts.

G. Stage: Boll opening stage (100-150 DAS)

Disease : Foliar diseases, CLCuD, boll rot.

IDM practices: Spray the crop with a mixture of streptocycline + copper oxy-chloride to check foliar diseases, clipping of the CLCuD affected parts, add the recommended insecticides for bollworm control-streptocycline/copper oxy-chloride/carbendazim to check boll rot complex, spray for the control of CLCuD vector, avoid picking of rotten bolls, open bolls should be picked immediately to avoid seed borne infection.

H. Stage: After last picking

IDM practices: Destroy crop residues completely dry the lint before storage to avoid the attack of micro-organisms, terminate the crop at maturity as early as possible to prevent the re-infestation of diseases, seed should be stored in well aerated dry atmosphere, acid delinting in combination with gravity grading of seeds prior to storage. ◆

रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स, नई दिल्ली नं. 19451/69

हमारी निःशुल्क दूरभाष सेवाएं

हिसार : 1800 180 3001 सोमवार, बुधवार, शुक्रवार
समय : 10-12 बजे

बावल : 1800 180 4002 सोमवार, बुधवार, शुक्रवार
समय : 10-12 बजे

करनाल : 1800 180 3111 मंगलवार, वीरवार

प्रकाशक : डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी, सह-निदेशक प्रकाशन के प्रबन्ध में चौ. च. सिं. ह. कृ. वि. मुद्रणालय, हिसार से मुद्रित एवं प्रकाशित/दिनांक 29.04.2020/मासिक